सिद्धयोग

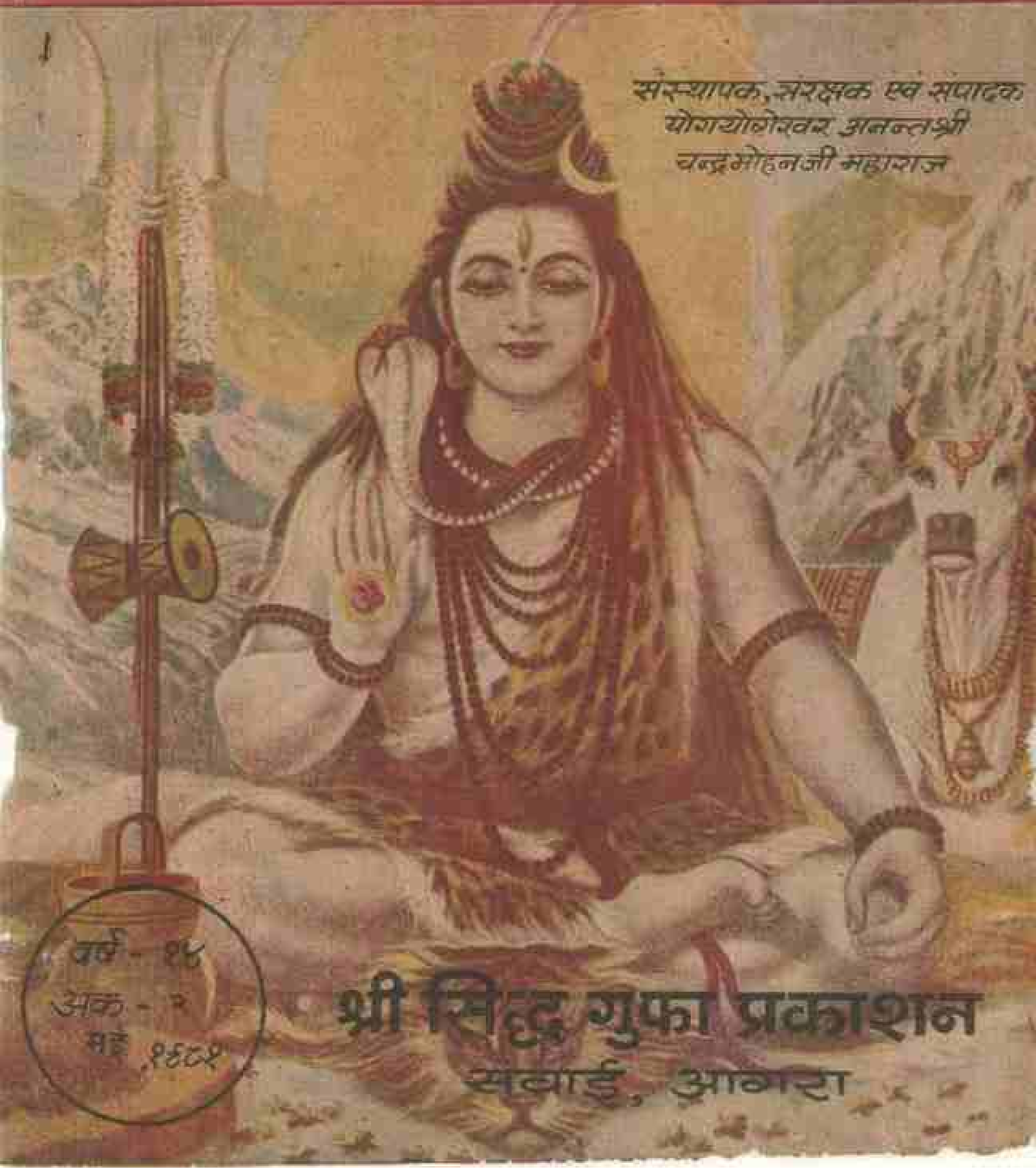

संस्थापक, संरक्षक एवं संपादक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष - १८
अंक - २
मई, १९८९

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सवाई, आगरा

इस अंक में—

प्रकाशक
श्री सिद्धगुफा, सवाई

❀ पूर्ण पुरुषेण सर्वम्
❀ अभ्यासी साधकों की दिनचर्या (विशेष लेख)
योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज २
❀ गुरु के पद-पङ्कज की प्रभुताई
साहित्याचार्य श्री जनकप्रसाद द्विवेदी ८
❀ निद्रा और जागरण
ब्रह्मलीन श्री मेहरे बाबा ६
❀ ध्यान प्रक्रिया
आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा १२
❀ महाभारत में मन्त्र जप तथा उसका महत्व
श्रीमती राजकुमारी मिश्रा १६
❀ निर्गुण काव्य में गुरु-महिमा
श्री जीवनलाल शर्मा २०
❀ मन्त्र-योग
श्री चन्द्रकिशोर दूबे २३
❀ बदलते मौसम की बीमारी से बचाव व इलाज
श्री पं० रामस्वरूप शास्त्री २७
❀ याचना
श्री रामसजीवनसिंह ३१
❀ साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर
श्री सद्‌गुरुदेव जी द्वारा ३२
❀ अन्तर यात्रा का सरलतम साधन आत्म-समर्पण
श्री जगदीशनरायण उपाध्याय ३८
❀ ध्यानयोग एवं आत्म साक्षात्कार
श्री सूरजप्रकाश शर्मा ४२
❀ पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम् ४५
❀ अध्यात्म तत्व
श्री मानिकचन्द उमर वैश्य ४७

संयुक्त सम्पादक
'दिव्य'

वार्षिक मूल्य : १८ रुपया

अवश्य आइये !

ॐ

अवश्य देखिये !!

योग साधन आश्रम ऋषिकेश

का

वार्षिक-योग महोत्सव

सभी भाई-बहिनों को यह जानकर परम हर्ष होगा कि अपने योग-साधन आश्रम ऋषिकेश का वार्षिक-योग महोत्सव मिती ज्येष्ठ सुदी अष्टमी, नवमी, दशमी तदनुसार ता० १०, ११, १२ जून ८१ बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार को मनाया जायगा।

उत्सव का कार्यक्रम बहुत ही रोचक एवं हृदयग्राही बनाने का आयोजन किया जा रहा है। उत्सव में योग-सिद्धान्तों पर उच्चकोटि के प्रवचन, भजन एवं सुमधुर शास्त्रीय संगीत आदि का कार्यक्रम रहेगा। आश्रम के ब्रह्मचारी अपनी यौगिक क्रियाओं का प्रदर्शन भी करेंगे। सभी सत्संग-प्रेमियों को इस समारोह में सम्मिलित होकर लाभ उठाना चाहिए।

सभी भाई-बहनों को श्री गुरुदेव जी की ओर से इस उत्सव के आमन्त्रण-पत्र भी भेजे जा रहे हैं। किन्तु डाक व्यवस्था ठीक न होने के कारण सभी पर नहीं पहुँच पाते हैं। अतः सभी भाई-बहिन इस सूचना को ही अपना आमन्त्रण समझते हुए उत्सव में सम्मिलित हों।

नोट—१२ जून शुक्रवार गंगा-दशहरा को नगर में शोभा-यात्रा (जलूस) का आयोजन है जिसमें बैंड बाजे के साथ श्री बालकृष्ण संकीर्तन मण्डल शामली, श्री ललितमोहन संकीर्तन मण्डल आगरा के अतिरिक्त और भी अनेक मण्डलियाँ भाग ले रही हैं। शोभा-यात्रा सभी सुन्दर झाँकियों एवं साज-बाज के साथ शाम के ६ बजे योग साधन आश्रम से प्रारम्भ होकर ऋषिकेश के मुख्य बाजारों से होती हुई रात के लगभग ११ बजे आश्रम पहुँचेगी। अतः सभी सत्संग प्रेमियों को उत्साह के साथ इस शोभा-यात्रा में सम्मिलित होना चाहिए।

निवेदक :—

मन्त्री – योग साधन आश्रम

रेलवे रोड, ऋषिकेश (उ० प्र०)

सिद्ध योग

वर्ष १४
अङ्क २

मई
१९८१

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विचरतो, मुक्तिं प्राप्नोति सद्यः ।
तत्प्राप्त्यर्थात् बहुविशदं योगशास्त्रोपदेशात्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

❀ पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ❀

यस्मात् परं नापरमस्ति किंचिद्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् ।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥

अर्थात्

उन परब्रह्म परमेश्वर श्रेष्ठ दूसरा कुछभी नहीं है, वे सर्वश्रेष्ठ हैं। जितने भी सूक्ष्म-तत्त्व है, उन सबसे अधिक सूक्ष्म वे ही हैं। उनसे अधिक सूक्ष्म कोई भी नहीं है। इसीसे वे छोटे-से-छोटे जीव के शरीर में प्रविष्ट होकर स्थित हैं। इसी प्रकार जितने भी महान् व्यापक-तत्त्व हैं, उन सबसे महान् अधिक व्यापक वे परब्रह्म हैं, उनसे बड़ा—उनसे अधिक व्यापक कोई भी नहीं है। इसीसे वे प्रलयकाल में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर लीन कर लेते है। जो अकेले ही वृक्षकी भांति निश्चय-भावसे परमधामरूप प्रकाशमय दिव्य आकाश में स्थित हैं, उस परब्रह्म परमात्मा से यह समस्त जगत् व्याप्त है—वे परम पुरुष परमेश्वर ही निराकार रूप से सारे जगत में परिपूर्ण है।

हमारा विशेष लेख—

❋ अभ्यासी साधकों की दिनचर्या ❋

❀ योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

प्रत्येक योगमार्ग के साधक के लिए अथवा उनके लिए जो योगमार्ग के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की साधना करता है, अपने अभ्युदय के लिए कुछ आवश्यक नियमों का पालन अनिवार्य रूपसे करना पड़ता है। हमारे शास्त्रों में स्थान-स्थान पर ऐसे आदेश और उपदेश मिलते हैं जिनको पालन करने से साधक, अपने आपको न केवल कृतकृत्य कर सकता है किन्तु सहज ही अपने लक्ष्य को भी प्राप्त कर लेता है। प्रायः देखा जाता है कि साधक वर्ग अपने गुरु उपदिष्ट मार्ग से यथा-तथा साधनायें तो कर लेते हैं किन्तु उनके अपने नियम कुछ भी नहीं होते। जैसे-जैसे उनको अवकाश मिलता है अपने अभ्यास में बैठ जाते हैं किन्तु वे इस पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते कि उनकी दिनचर्या कैसी होनी चाहिए, खान-पान कैसा और कितना हो, किन नियम और व्रतों की शृंखला में साधक अपने को बांधकर रक्खे इसका पूरा-पूरा ज्ञान उन्हें नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि वे साधक अपने यथार्थ लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाते।

सबसे प्रथम अभ्यासी साधक का कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि उसे अपनी दिनचर्या और रात्रिचर्या नियमित रूप से बनाकर रखनी चाहिए। जो साधक अपनी बनाई हुई दिनचर्या और रात्रिचर्या के अनुसार चलते हैं, तदनुसार अपनी साधनायें करते हैं, साधना उनका साथ देने लगती है और वे अपनी स्थिति यानी लक्ष्य को प्राप्त करने वाले बन जाया करते हैं।

भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने श्रीमद्भगवद्गीता में आदेश दिया है कि एक योगी साधक को अपने आहार-विहार पर पूरा नियन्त्रण रखना चाहिए। जो साधक अनियमित रूप से जिह्वा के स्वाद को सम्मुख रखकर अधिक मात्रा में भोजन करते रहते हैं वे अपने लक्ष्य की ओर नहीं बढ़ सकते। निद्रा और आलस्य उन्हें घेर लिया करता है। स्वयं भगवान कहते हैं—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति
न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य
जाग्रतो नैव चार्जुन॥

युक्ताहारविहारस्य
युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य
योगो भवति दुःखहा ॥
—गीता ६/१६-१७

अर्थात् जो लोग अधिक भोजन करते हैं वे योग सिद्धियों को नहीं पा सकते और जो लोग हठधर्मी में आकर भूखे रहते हैं वे भी सिद्धि को नहीं पा सकते, तथा जो लोग वासना भोगी होकर बहुत ज्यादा सोते रहते हैं वे भी अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकते। प्रतिकूल इसके वे भी जो व्यर्थ के वाग्विलास में समय व्यतीत करके रात्रि में ठीक समय पर शयन नहीं करते वे भी सिद्धि को नहीं पा सकते। प्रत्युत जो लोग अपने आहार-विहार में युक्त हैं और प्रत्येक कार्य-कलाप में जो युक्त चेष्टा वाले हैं, जिनका सोना और जागना नियमित है योग उनके लिए दुःख का नाश करने वाला हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण-चन्द्र ने श्रीमद्भगवद् गीता के १८ वें अध्याय में भी इसी प्रकार का एक और आदेश दिया है जो प्रत्येक अभ्यासी साधक के लिए परमावश्यक एवं पालनीय है। मेरी अपनी राय में साधक के जीवन में प्रकाश देने वाला यह एक और आदेश जो भगवान ने दिया है इस प्रकार है—

विविक्तसेवी लघ्वाशी
यत वाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं
वैराग्यं समुपाश्रितः ॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं
क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो
ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
—गीता १८/५२-५३

अर्थात् जो साधक विविक्त सेवी है अर्थात् एकान्तवास करता है और इसके साथ-साथ थोड़ा व नियमित भोजन करता है और अपनी वाणी शरीर व मन पर नियन्त्रण रखता है एवं मन में वैराग्य धारण करके ध्यानाभ्यास करता रहता है और अपने अहंकार, बल, दर्प, काम क्रोध एवं परिग्रह का त्याग करके शान्त-भाव से स्थित रहता है वह ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेता है। और जिसने अपनी साधना से इस प्रकार की स्थिति का सम्पादन कर लिया है वह अवश्य ही अपने आपको कृतकृत्य करता हुआ ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेता है और प्रसन्नात्मा बनकर वह सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। अतः साधना मार्ग के सभी पथिकों को अपना जीवन तपोमय बनाकर रखना चाहिए। वैसे तो शास्त्रीय संविधान के अनुसार 'द्वन्द्व सहनं तपः' कहा गया है। अर्थात् सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुख-दुःख, आदि का समान भाव से सहन कर लेना तप कहा जाता है और इसे

दृष्टिमें रखकर जो साधकगण अपने मनोनुकूल विविध प्रकार की कठिन साधनाओं को अपने जीवन में निहित करने के लिए तीव्रतम् तपश्चर्या आरम्भ कर देते है, जैसे कृच्छ चान्द्रायण व्रत करना, पञ्चाग्नि तपना, घोर सर्दी में भी शीतल जल में खड़े होकर तप करना। ऐसे तीव्रतम् तप अकरणात्करण, श्रेय के सिद्धान्तानुसार किसी हद तक ठीक हो सकते हैं। यानी कुछ न करने से कुछ करना ठीक है किन्तु इस दशा में अखिल ब्रह्माण्डनायक भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने मुखारविन्द से साधकों को जो उपदेश दिया है वही उपादेय प्रतीत होता है और उसी को अपने जीवन में घटित करने का प्रयास साधकों को करना चाहिए। विविध तपों में उनका उपदेश इस प्रकार है।

शारीरिक तप—

देवद्विजगुरुप्राज्ञ
पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च
शारीरं तप उच्यते॥
—गीता १७/१४

अर्थात् इष्टदेव का पूजन, ब्राह्मणों का पूजन, गुरुदेव का पूजन एवं प्रज्ञा प्राप्त योगियों पूजन, शुद्धि रखना अपने आपको विनम्र बनाकर रखना, ब्रह्मचर्य एवं अहिंसा पालन का व्रत रखना शारीरिक तप कहलाता है। साधक इस प्रकार शारीरिक तप करने के लिए अपने आपको अति कठोर साधनाओं में डाल देता है फिर भी परिणाम कुछ नहीं प्राप्त कर पाता। प्रत्युत साधक कालान्तर में क्रोध और अहंकार को धारण करके अपने आपको परम सिद्ध मानते हुए स्वय को विवेक-पथ से मुक्त कर लेते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने शारीरिक तप का कितना सुन्दर विवेचन अपने श्रीमुख से किया है। हमारे शास्त्रीय सिद्धान्त भी इसी सत्य का प्रतिपादन करते हैं। विनम्रता का सद्गुण साधक की आयु, विद्या, बल और यश की वृद्धि का कारण बन जाता है। यथा—

अभिवादन शीलस्य
नित्य वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते
आयुर्विद्या यशोबलम्॥

इसके अनुसार जो साधक देव, द्विज, गुरु एवं प्राज्ञ, यानी ऋतम्भरा प्राप्त योगियों और विद्वानों का आदर और पूजन करते है एवं साथ ही ब्रह्मचर्य और अहिंसा व्रत का पालन करते है, वे निश्चय ही ब्रह्मभूत हो जाते है। अर्थात् उन्हें सर्वत्र ब्रह्म का दर्शन और साक्षात्कार सहज सुलभ हो जाता है। ब्रह्मभाव में विचरण की जिनकी आदत पड़

जाती है उन्हें शीघ्रातिशीघ्र समाधि सिद्धि हो जाती है। ऐसे समाधि सिद्धि योगी सर्व समर्थ होकर क्या नहीं कर सकते ? अर्थात वे सब कुछ करने की क्षमता वाले बन जाते हैं।

इसी प्रकार भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने श्रीमद्भगवद्गीता में वाणी के तप के विषय में बतलाया है—

अनुद्वेगकरं वाक्यं
सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव
वाङ्मयं तप उच्यते ॥
—गीता १७/१५

अर्थात मनुष्य को उचित है कि ऐसी मीठी वाणी बोले जिससे किसी को भी उद्वेग (उत्तेजना) पैदा न हो। शास्त्रों का भी उपदेश है कि—

सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात
मा ब्रूयात सत्यमप्रियं।

अर्थात मनुष्य को चाहिए कि सत्य बोले किन्तु अप्रिय कठोर उद्वेग को उठाने वाला सत्य न बोले। इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि मनुष्य ठकुर सुहाती कहने लगे और मीठी-मीठी बातों की आड़ में झूठ बोलना भी आरम्भ करदे। अनुद्वेग यानी उत्तेजना न पैदा करने वाला सत्य बोलना ही मनुष्य का परम धर्म है। इसलिए भगवान ने ऐसी वाणी को वाङ्मय तप की संज्ञा दी है। इसके साथ-साथ स्वाध्याय नियमित रूप से करना भी आवश्यक है। स्वाध्याय के विषय में मैंने अपने पहले लेखों में कई बार स्पष्टीकरण किया है कि प्रणवादि नाम जपः स्वाध्याय अर्थात् ओंकार आदि परमात्मा के पवित्र नामों का जप करना या वेद, शास्त्र, उपनिषद् आदि का पाठ करना स्वाध्याय कहलाता है ऐसे स्वाध्याय का यह परिणाम निकलता है कि मनुष्य इष्ट देवता सम्प्रयोगः से अपनी मनोभिलषित कामनाओं को प्राप्त कर लेता है इसी को भगवान श्रीकृष्ण ने वाङ्मरूप तप कहा है जो प्रत्येक साधक के लिए अपने पालनीय नियमों के अन्तर्गत अत्यन्त आवश्यक है।

मानस तप—

इसके बाद तीसरा तप मानस तप के रूप में बतलाया है। मानस तप का अभ्यास करने वाले तपस्वी अधिकतर मौन व्रत को धारण किया करते हैं, किन्तु मौन व्रत धारण करने पर भी मन अपनी क्रियाओं को नहीं छोड़ता इसलिए जो रूपक भगवान श्रीकृष्ण ने बतलाया है उसका अभिप्राय मन की क्रियाओं का कण्ट्रोल करना अवश्य है। वैसा करने से ही भाव संशुद्धि सौम्यत्वं एवं मानस-प्रसाद को मनुष्य प्राप्त कर लेता है। और ऐसा करने से ही साधक अपने आप पर नियन्त्रण भी कर लेता है यह है मानसतप का यथार्थ रूप

जिसको अपने पालनीय नियमों के अन्दर साधक को समावेशित करके रखना चाहिए।

यह कुछ इस प्रकार के नियम है जिनके पालन में साधकों को अनिवार्यता के साथ लगा रहना चाहिए। साथ-साथ अपनी दिनचर्या और रात्रिचर्या को नियमानुवर्तिता में सम्बद्ध कर देना चाहिए। जैसे नियमित सोना और नियमित उठना प्रत्येक गृहस्थ या विरक्त साधक को प्रातःकाल पौनेचार बजे उठ जाना चाहिए। ३॥। बजे बिस्तर से उठने के के बाद थोड़ा जल पीकर शौच जाना चाहिए। ऐसा करने से कोष्ठ-बद्धता की निवृत्ति होती है और बहुत ही सरलता से मल विसर्जन किया जा सकता है। किन्हीं लोगों को कोष्ठ-बद्धता की अधिक शिकायत होती है एवं उदर विकार रहता है उनको चाहिए कि वे प्रातः-काल में पीये जाने वाले उषा पान में नींबू का रस मिला लिया करें। ऐसा करने से कोष्ठ-बद्धता की निवृत्ति बहुतही जल्दी हो जायगी। शौच जाने के बाद दन्त धावन बहुत ही आव-श्यक है। दन्त-धावन करने वालों को बबूल की या मौलश्री की दन्त-धावन करनी चाहिए और दाढ़ों से चबाचबा करके उसका बहुत महीन ब्रुश बनाना चाहिए और दाढ़ों व दांतों पर उस ब्रुश को अच्छी प्रकार घिसना चाहिए। घिसने के बाद पानी से कुल्ला करके दांतों को साफ कर लेना चाहिए। इस प्रकार से ब्रुश बनाकर कम से कम २ बार काटकर फेंकना और साफ करना चाहिए। इसके बाद दांतौन को दांतों से चीर कर उससे जीभ साफ करनी चाहिए इसका नाम जिह्वा दांतौन है इसके बाद शीतल ताजे जल से स्नान करना चाहिए। स्नान के बाद शरीर को खद्दर के तौलिये से घर्षण करके साफ करना चाहिए। स्नान करने के बाद नैत्यिक व्यायाम करना चाहिए व्यायामों में योगासनों का व्या-याम ही सर्वोत्कृष्ट व्यायाम है और इनमें भी सर्वोत्कृष्ट व्यायाम हमारे आश्रम का 'जीवन तत्व व्यायाम' है जिसको प्रभुजी ने विशेष रूप से साधकों के लिए अपने मन से प्रकट किया है। नैत्यिक व्यायाम ४। बजे से ५। बजे तक १ घण्टा अवश्य करना चाहिए। ५। बजे से ६। बजे तक अपने गुरुमन्त्र का जाप करते हुए सवा सात बजे तक नियमित रूप से ध्यान में बैठना चाहिए। सवा सात बजे के बाद नैत्यिक स्वल्पाहार करके अपने नियमित रूप से निर्धारित गृहकार्यों को करना चाहिए जैसे सर्विस पर जाना अथवा दुकान पर जाना इत्यादि। दोपहर को साधक को शुद्ध सात्विक भोजन करना चाहिए। शुद्ध सात्विक आहार में क्या-क्या खाना चाहिए इसका हम किसी अपने दूसरे लेख में वर्णन करेंगे। भोजन के बाद में कम से कम दो घण्टे बाद कुछ फलों का सेवन करना चाहिए विशेष कर मौसम्मी

व पपीता आदि। उसके पश्चात् शाम को लगभग ५ बजे करीब डेढ़ पाव या आधा किलो गाय का दूध धीरे-धीरे स्वाद ले ले कर पीना चाहिए। इसके बीच का समय गृहस्थियों को अपने गृह-कार्यों में लगाना चाहिए और विरक्त साधकों को अपना समय मन्त्र-जप या स्वाध्याय में लगाना चाहिए। मन को चिंतन में लगाये रखने का भी प्रयत्न करना चाहिए। सायंकाल ७ बजे तक इस कार्यक्रम के पश्चात् साधक को कुछ समयके लिए भ्रमण को जाना चाहिए। भ्रमण के बाद घर आकर नैत्यिक आरती पूजा संध्या-वंदन के बाद सात्विक भोजन कर लेना चाहिए। ख्याल रहे कि भोजन को खूब चबाकर करना चाहिए जिससे उसका परिपाक जल्दी हो जाय। भोजन करने के उपरान्त १ घण्टे बाद १ पाव या १॥ पाव दूध पीना चाहिए इससे अधिक दूध नहीं पीना चाहिए। तदोपरान्त ९ से १० बजे तक निरंतर अपने गुरु मन्त्र का जप करते रहना चाहिए और १० बजे सीधे लेटकर अपने गुरुदेव का ध्यान करते हुए सो जाना चाहिए। ऐसा करने पर निद्रा-काल में भी स्वतः ही भजन बनने लगेगा एवं निद्रा समाधि के रूप में परिवर्तित हो जायगी। इसी बात को लक्ष्य में रखकर सन्त कबीर ने कहा है कि—

सोना तो सबसे भला जो कोई जाने सोय।
अन्तरलौ लागी रहे सहजहि सुमिरन होय॥

यह है प्रत्येक साधक के लिए आवश्यक पालने योग्य दिनचर्या एवं रात्रिचर्या। यद्यपि इस लेख में बहुत वि तार और स्पष्टीकरण के साथ हम सभी पालनीय नियमों व उपनियमों का उल्लेख तो नहीं कर पाये हैं फिर भी विज्ञ साधकों के लये संकेत ही काफी है। यदि इस लेख को पढ़ने वाले साधक लोग इस नियमावली का पूरी तरह से पालन करेंगे तो निश्चय ही वे पूरी तरह लाभान्वित होंगे।

❋ ❋ ❋ ❋

मनुष्य का चित्त परिवर्तनशील है। हर क्षण उसमें परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन ऊर्ध्वगामी यानी ऊपर ले जाने वाला होना चाहिए। तभी समझना होगा कि साधना का ऊर्ध्वगामी क्रम यानी परिपूर्णावस्था तक पहुँचाने वाला विकास-क्रम शुरू हुआ। 'क्रम' योगशास्त्र का शास्त्रीय शब्द है। उसकी व्याख्या यह है कि चित्त की साधना या विकास हर क्षण इस तरह होता चले कि वह कभी पीछे न हटे और दिन-प्रति-दिन प्रगति करते हुए अन्त में परिपूर्ण अवस्था प्राप्त करे।

साधना की परिपूर्ण अवस्थामें मालूम होगा कि चित्त सत्वगुण की पराकाष्ठा तक पहुँच गया है, उसका विकास परिपूर्ण हो गया है और अब प्रकृति और पुरुष दोनों अलग होने योग्य हो गये हैं। —श्री बालकोबा भावे

गुरु के पद-पंकज की प्रभुताई

❀ साहित्याचार्य श्री जनकप्रसाद द्विवेदी, झांसी

नारद व्यास रहे गह मौन, गुरु के गुन की कहुँ थाह न पाई ।
शेष गनेश की बात कहा, चतुरानन भूल गयो चतुराई ॥
देव अदेवन की कहै कौन, सके न सुरेश दिनेश बताई ।
कैसे कहैं, अरु कहाँ लौं कहै, गुरु के पद पङ्कज की प्रभुताई ॥
सूरज बंश भये अवतंस, धरे नर रूप जो लीला बताई ।
राम औ कृष्ण को नाम धरें, गुरु की कल कीरत है जिन गाई ॥
बुद्ध प्रबुद्ध भये जग में, जिन ज्ञान समुद्र की धार बहाई ।
कैसे कहै अरु कहां लौ कहैं, गुरु के पद पङ्कज की प्रभुताई ॥
औगन खान जो रामरती, प्रभु दीनों है ताहि को सिद्ध बनाई ।
मुलखहि तीजो नेत्र दियो प्रभु, शंकर की पदवी जिन पाई ॥
केतिक जीवन दान दिये प्रभु, केतिक को अपनी सरनाई ।
कैसे कहौं अरु कहां लौ कहैं, गुरु के पद पङ्कज की प्रभुताई ॥
तीरथ दान दिये बहु विप्रन को अरु, जाप किये माला कर लै ।
ढूढ़त चारों ओर फिरयो, पर पायो कछू न रती भर लै ॥
मांगत है धन धाम धरा, कर है कहा कञ्चन मानिक लै ।
चेत रे चेत अजौं चित चेत, हिय में गुरु के पद नख धर लै ॥
एकहि तत्व में व्याप रहो गुरु, रूप दिनेश प्रकाश बतावै ।
'चन्द्र' की शीतल चन्द्रकला सुधा, बिन्दु धरा पै सदा बरसावै ॥
शीतल मन्द सुगन्ध बयार, चलै गुरु ज्ञान की बात बतावै ।
जीवन नैया तरैगी नहीं, जब लौ गुरु की कृपा कोर न पावै ॥
नन्द के द्वारे बधैया बजैं, अवधेश यही गुन गाय सुनावै ।
अर्जुन कर्ण युधिष्ठिर आदि जे, ज्ञान को भानु गुरु को बतावै ॥
दीनन के प्रति पाल प्रभू अरे, मन काहे प्रभू को भुलावै ।
जीवन नैया तरेगी नहीं, जब लो गुरु की कृपा कोर न पावै ॥

निद्रा और जागरण

ब्रह्मलीन श्री मेहेर बाबा

सो जाना जीवन की आदि शक्तियों में से एक के वशीभूत हो जाना है। नींद एक अनिवार्य आवश्यकता है। उसका स्थान कोई दूसरी चीज नहीं ले सकती, यद्यपि उसकी आवश्यकताओं में कुछ मात्रा में सामंजस्य सम्भव है, जैसे सोने के लिए दस बजे की बजाय ग्यारह बजे का समय निश्चित कर लेना। ऐसे सामंजस्य सुनिश्चित सीमाओं के अन्तर्गत ही किये जा सकते हैं। नींद सम्बन्धी विशिष्ट आवश्यकताओं के साथ किसी लम्बी अवधि तक छेड़-छाड़ नहीं की जा सकती।

औसत दर्जे के मनुष्य के लिये, दीर्घकालीन निद्रा-परित्याग अनिवार्य रूप से शारीरिक विकार एवं चित्त में दुर्बलता अथवा विक्षेप पैदा करता है। चित्त अपनी स्वाभाविक स्फूर्ति खो देता है और निगूढ़ समस्याओं पर एकाग्र होने और उनका समाधान करने की उसकी योग्यता में विशेष कमी आ जाती है। इसके अलावा वह दैनिक जीवन द्वारा प्रस्तुत समस्याओं का सामना करने की क्षमता भी खो बैठता है।

यदि स्वयं जीवन के उद्देश्य को पूर्णरूप से समझना है, तो नींद को, व्यक्ति के जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक होने के कारण, खूब अच्छी तरह समझ लेना होगा।

केवल शरीर विज्ञान विषयक शब्दों में नींद की व्याख्या करने का कोई भी प्रयास अपूर्ण और साथ ही भ्रामक होगा। बहुत से लोग नींद को मस्तिष्क के उच्चतर स्नायु केन्द्रों की थकान का अनिवार्य परिणाम मानते हैं। कुछ लोग विषाक्त तथा अन्य सड़े गले पदार्थों का मस्तिष्क में एकत्रित हो जाने को नींद का कारण बताते हैं। अन्य लोग नींद को विशिष्ट निद्रा-केन्द्रों में उत्पन्न स्नायु आवेशों के कारण उच्चतर मस्तिष्क केन्द्रों के निरोध का फल मानते हैं।

कुछ दूसरे विद्वान नींद को मस्तिष्क की स्वाभाविक अवस्था मानते हैं और वे बाह्य उद्दीपनों द्वारा मस्तिष्क के स्फूर्तिमान होने को चेतनशीलता समझते हैं। इस प्रकार उनकी दृष्टि में, निद्रा मस्तिष्क का उस नैसर्गिक अवस्था में लौट जाना है जो इन बाह्य उद्दीपनों की वापसी पर उत्पन्न होती है।

शरीर विज्ञान विषयक इन सब व्याख्याओं का एकमात्र सार यह है कि नींद भौतिक

मस्तिष्क की उपज है। यह मूलतः एक दोषपूर्ण निष्कर्ष है। चेतना की वास्तविक प्रास्थिति तथा शरीर एवं आत्मा के साथ उसके सम्बन्ध को ठीक ठीज समझने के लिये एक अधिक गहन निरूपण की आवश्यकता है।

पूरे विकास-क्रम में, चेतना मन में तथा मन के माध्यम से प्रस्फुटित होती है और भौतिक शरीर के विकासोन्मुख माध्यम द्वारा प्रकट होती है, परन्तु चेतना स्वयमेव आत्मा में वास करती है, शरीर तो केवल माध्यम है जिसके द्वारा चेतना अपने को व्यक्त करती है।

युग-युग में एकमेव जीवन आवेग (व्यक्तिगत हुई आत्मा) स्वयं को असंख्य रूपों द्वारा जैसे-जैसे व्यक्त करती है तैसे-तैसे वह क्रमशः अधिक चेतनशील होती जाती है। इस प्रकार से विकसित चेतना मन के अधिकार में होती है और शारीरिक माध्यम के लोप के साथ वह लुप्त नहीं हो जाती।

चेतना के विकास के साथ-साथ भौतिक रूप भी विकसित होता जाता है। शारीरिक रूप लगातार एवं ऊर्ध्वगामी क्रम में एक के बाद एक प्रकट होते जाते हैं ताकि परिपूर्ण चेतना का रूप माध्यमों के उपयुक्त क्रम द्वारा उत्तरोत्तर विकसित हो सके। चेतना देह सम्बन्धी प्रक्रियाओं की कोई आकस्मिक उपज नहीं है, अपितु वह तमाम योनियों के अस्तित्व का मूल कारण है।

चेतना वह मापदण्ड है जिससे निद्रा और जागरण में वर्तमान विभेदों को समझा जा सकता है। जागरण में मन सचेत हो जाता है और अपने को शरीर द्वारा अभिव्यक्त करता है। निद्रा में मन बाह्य अभिव्यक्ति बिना आत्मा की एक प्रशान्त अवस्था में लौट जाता है। शरीर विज्ञान की दृष्टि से, निद्रा और जागरण की अवस्थाओं को उच्चतर मस्तिष्क केन्द्रों की गति को मन्द करना और तेज करना कहा जा सकता है, परन्तु उनकी अधिक सार्थक परिभाषा चेतना का 'नीचे को बैठना' और 'उभड़ना' है।

नींद की प्रशान्त अवस्था और जागरण की सक्रिय अवस्था के बीच चेतना क्यों झूलती रहती है, इस मूल प्रश्न का उत्तर देने के लिये हमें चेतना के मूल उद्गम की समस्या पर विचार करना होगा। अनादि आदि से पूर्व परमात्मा रूपी अपार महासागर पूर्णतः आत्मविस्मृत था। परात्पर परब्रह्म अवस्था में परमात्मा के आत्मविस्मृत अपार महासागर की निपट और अनमुक्त विस्मृति भंग हुई ताकि परमात्मा ईश्वरत्व की अपनी पूर्णता को चेतन रूप से जान सके। यह इसी एकमात्र उद्देश्य के लिये ही था कि चेतना का विकास आरम्भ हुआ।

चेतना स्वयमेव परमात्मा की परात्पर परब्रह्म अवस्था में अन्तर्निहित थी। परमात्मा

की इसी परात्पर परब्रह्म अवस्था में अंतर्निहित थी – चैतन्य होने की मूल लहर। यह वही मूल लहर थी जिसने अन्तर्निहित चेतना को सर्वप्रथम रूप प्रदान किया।

"विश्राम" के साधनरूप में, चेतना प्रगाढ़ निद्रा की विस्मृति खोजती है जहां वह स्वयं को आत्म-विस्मृति के सागर—परमात्मा की मूल परात्पर परब्रह्म अवस्था—में अस्थायी रूप से समर्पित कर देती है। प्रगाढ़ निद्रा में चेतना कुछ समय के लिये गुप्त हो जाती है जब तक कि खर्च न हुये संस्कारों का बोझ उसे पुनः जागृतावस्था में प्रकट होने के लिये विवश नहीं कर देता।

असह्य थकान की अपनी भावना पर विजय पाने हेतु मनुष्य के जागृत प्रयासों में से कोई भी प्रयास आत्मा को पूर्णतः मान्य नहीं होता। अन्त में सभी असन्तोषजनक सिद्ध होते हैं। इसलिये मनुष्य अस्थायीरूप से प्रगाढ़ निद्रा की विस्मृति में लौट कर विश्राम और ताजगी चाहता है। नींद की यह मनोवैज्ञानिक आवश्यकता टाली नहीं जा सकती। जिस प्रकार भौतिक शरीर को क्रिया और विश्राम-काल की बारी-बारी से आवश्यता पड़ती है, उसी प्रकार मन को भी ऐसी ही अवधियों की आवश्यकता होती है।

नींद वह साधन है जिसके द्वारा मन अपने युगों पुराने संस्कारों तथा इच्छाओं के भार द्वारा डाले गये दबाव से अस्थायीरूप से विश्राम पाता है। "आत्म चैतन्य बनने" के खेल में और आगे भाग लेने के लिये मन नींद द्वारा अपने को अस्थायीरूप से ताजा कर लेता है। यदि जागृत चेतना के समय आत्म को अपनी ईश-प्रकृति का पूरा भान होता, तो उसे नींद की आत्म-विस्मृति में लौटने की जरूरत न पड़ती। उसका स्वाभाविक आनन्द दैवी विश्रान्ति का एक शाश्वत स्रोत होता।

जब व्यक्ति निद्रावस्था में चेतना खो कर जागृतावस्था की उकताहट से बचना चाहता है, तब चेतना को लेशमात्र भी क्षति नहीं होती। चेतना का अन्तर्मुख हो अस्थायी विस्मृति की अवस्था में पहुँचना प्रगाढ़ निद्रा है। इस अवस्था में मन पूर्णतः शान्त रहता है। वह न तो सीमित आत्मचैतन्यता की असहायता का अनुभव करता है, और न उसे निःसीम सत्य के रूप में असली स्वरूप का ज्ञान होता है। चेतना जब विस्मृति के सागर में डूब जाती है, तब सीमित मायावी संसार और यथार्थ अनन्त अवस्था दोनों लुप्त हो जाते। प्रगाढ़ निद्रा में चेतना केवल एक अप्रकट सम्भावना के रूप में विद्यमान रहती है जिसे पुनः सक्रिय होना पड़ता है।

नींद का चेतना के साथ वही सम्बन्ध है जो मृत्यु का जीवन के साथ है। मृत्यु से जीवन का विनाश नहीं होता, वरन् अस्तित्व की दूसरी अवस्था में उसका स्थानान्तर हो जाता है। इसी प्रकार नींद से चेतना नष्ट नहीं होती, बल्कि थोड़े काल के लिये विराम-अवस्था में चली जाती है। चेतना सदा विद्यमान रहती है, चाहे वह अचेतना के रूप में गुप्त हो या चेतना के रूप में प्रकट हो।

ध्यान-प्रक्रिया

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा एम. ए. एम. एड.

श्री सद्गुरु प्रदत्त मन्त्र का बताई हुई विधि से जप करते-करते मन्त्र जप वाचिक से चलकर मन तथा बुद्धिगत हो जाता है और मन्त्र चित्त को प्रकाशित कर बांधने लगता है। मन्त्र चित्त का ही स्वरूप बन जाता है। जब चित्त एकाग्र होने लगता है तो समझना चाहिए कि उसकी चञ्चलता कम होती जा रही है और उसमें धारणा शक्ति विकसित होने वाली है। ध्यान के पहले प्रत्याहार तथा धारणा पुष्ट होनी चाहिये। जैसे कोई गवैया सुन्दर राग में गायन करता है तो मन बरबस उधर खिचा चला जाता है, उसी प्रकार मन्त्र की निरोधिका शक्ति के द्वारा मन वाह्य विषयों से हटकर अन्तर के नाद, प्रकाश, शब्द रूप, रस, गन्ध को चाहने लगता है। मन आनन्द का लोभी है। यदि उस चित्र में भी कोई सुभावनी आकृति, ध्वनि या गन्ध मिल जाय तो वह उसके पीछे दीवाना हो जाता है। सिनेमा प्रकाश और ध्वनि का ही तो खेल है। उसके पीछे आबाल-वृद्ध सभी मतवाले दिखाई पड़ते हैं। इन वाह्य इन्द्रियों से प्रतीत होने वाले विषयों में आनन्द नहीं है, आनन्दाभास है। जैसे चित्र के खूटे से हाथी को नहीं बांधा जा सकता, उसी प्रकार बाह्य आनन्दाभास की वस्तुओं से मन को नहीं बांधा जा सकता। उसके लिए इन्द्रियों के बाहरी व्यापारों को बन्द कर उनके अन्दर के द्वार खोलने की आवश्यकता है। उसके लिए मन्त्र जप सबसे प्रबल साधन है। नाम और नामी का अभेद सम्बन्ध है परमात्मा के प्रणव आदि पवित्र नामों के जप से उनके रूप और गुण मन को तदाकार करने लगते हैं और सतोगुणी परमाणुओं का चित्त के क्षेत्र में विस्तार होने लगता है जिससे रोग, प्रमाद, संशय आदि साधना के अन्तरायों का अभाव होने लगता है और ज्योतिर्मय पुरुष में मन लीन होने लगता है। नादानुसन्धान या अजपा जप के द्वारा शब्द ही ऊष्मा और प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है। जिस प्रकार भौंरा कीड़े को पकड़ कर उसे अपनी गुञ्जार सुनाता है, थोड़े समय में उस गुञ्जार के परिणामस्वरूप कीड़ा भौंरा ही बन जाता है। इसे भृङ्गी कीट साधना के नाम से शास्त्रकारों ने कहा है। साधक भी मन्त्र जप के बल से मन्त्र के द्वारा प्रतिपादित देवता, मन्त्र प्रदाता गुरु, मन्त्र के प्रभाव से सिद्ध हुए सिद्धों की अनुकम्पा द्वारा ध्यान

और समाधि को प्राप्त कर लेता है। योग-दर्शन में भगवान व्यासदेव ने योग की प्राप्ति का सबसे सबल साधन मन्त्र जप तथा ध्यान माना है। उनका मत है—

स्वाध्यायात् योगमासीत्
योगात् स्वाध्यायमासते।
स्वाध्याय योग सम्पत्त्या
परमात्मा प्रकाशते ॥

अर्थात् मन्त्र जप से ध्यान लगता है और ध्यान से मन्त्रजप होता है। मन्त्रजप के बाद ध्यान और ध्यान के बाद मन्त्रजप करते रहने से समाधि भावना परिपक्व होती है और परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

ध्यान, धारणा की परिपक्व अवस्था का नाम है। धारणा मन को किसी आलम्बन पर टिकाने का नाम है। वह आलम्बन किसी मूर्ति, चित्र या वस्तु के बाह्य रूपमें हो सकता है अथवा अन्दर मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणि-पूरक, अनाहत, विशुद्धाख्य, आज्ञा, गुरुपदम, सहस्रार तथा शून्यचक्र के रूप में हो सकता है। किसी एक आलम्बन में मन टिका लेने पर मन में आनन्द ग्रहण करने की सच्ची भूख जगती है। उसके बाद जल की अविच्छिन्न धारा के समान चित्त अधिक देर तक उसी लक्ष्य में स्थिर रहने लगता है। वैसे तो चित्त प्रतिक्षण वृत्तियों की हलचल, संस्कारों के प्रवाह तथा कर्म शृंखला के उपभोग के परि-णामस्वरूप बदलता रहता है। किन्तु ध्यान के समय चित्त का परिवर्तन एक रूपी होता है। अतः उस समय चित्त एक लक्ष्य पर स्थिर जान पड़ता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में इस अवस्था का संकेत छठे अध्याय के उन्नीसवें श्लोक में किया है कि जिस प्रकार निर्वात स्थान में रखा दीपक बिना हिले-डुले स्थिर जलता रहता उसी प्रकार ध्यान का अभ्यास करने वाले योगी का चित्त भी ध्येयाकार हो जाता है।

ध्यान की दो प्रकार की परिभाषायें शास्त्रों में मिलती है। एक में आलम्बन वस्तु की धारणा करने का निर्देश है, दूसरी में 'ध्यानम् निर्विषयम् मनः' इस कथन के द्वारा निरालम्ब शून्य और अनहद तथा निराकार की धारणा का संकेत मिलता है। इसी को साकार और निराकार या स्थूल तथा सूक्ष्म ध्यान भी कहते हैं। योगेश्वर श्रीकृष्ण ने दोनों प्रकार की ध्यान प्रक्रियाओं पर स्वाभि-मत इन शब्दों में प्रकट किया है—

अव्यक्ताहि गतिर्दुखम् देहवदभिर वाप्यते।

अर्थात् देहाध्यास होने से हमारे मन का स्थूल के साथ इतना दृढ़ लगाव हो गया है कि उसको छोड़कर निराकार में मन शीघ्र नहीं जाता। शनैः शनैः अभ्यास करते-करते साकार की धारणा परिपक्व होने पर मन निराकार

की ओर जा सकता है। स्थूल भूतों की धारणा के बाद तन्मात्राओं की धारणा और तन्मात्राओं के बाद ज्ञानेन्द्रियों, अन्तःकरण आदि की धारणा स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने की प्रक्रिया पाता है। ध्यान का प्रारम्भ "वीतराग विषयम् वा चित्तम्।" के नियमानुसार वीतरागी सिद्धों के स्थूल आकार के ध्यान से सर्व प्रथम करना चाहिए। अपने इष्टदेव, सद्गुरुदेव के सगुण साकार रूप का ध्यान करने से समाधि-सिद्धि शीघ्र होती है क्योंकि पिण्ड-ब्रह्माण्ड की एकता है, अतः सर्व प्रथम मन की एकता के लिए स्थूल साकार ध्यान उपयोगी है। साधक का चित्त जब साकार में एकाग्र हो जाता है तो निराकार में भी स्थित होने लगता है और अनन्त, अनहद चिदानन्द के स्वरूप में यह चित्त परिणित होकर नाना प्रकार की सिद्धियों का दाता बन जाता है। ध्यान के साथ जब मन और प्राणों की गति निश्चल हो जाती है। तब ध्यान समाधि में बदल जाता है। जब ध्यान करने वाले ध्याता को अपने स्वरूप का तथा वह कहां बैठा है तथा क्या कर रहा है, इस सबका भान नहीं रहता तो यह ध्यान ही समाधि बन जाता है। किसी प्रकार की चेष्टा किये बिना स्वयं प्रकाशित परमात्म चैतन्य प्रकाशित होने लगे तो समाधि भावना दृढ़ होने लगती है और जब जागृत स्वप्न, सुषुप्ति में योगी तुरीयावस्थामयी चिद्रूप अवस्था में रहने लगे, उसके श्वास का आना और जाना तक बन्द हो जाय तो ऐसा योगी जीवन्मुक्त अवस्था में पहुंच जाता है। जब अन्दर ध्यान का परिपाक हो जाता है तो बाहर भी वही दीखता है जो अन्दर है। उस अवस्था के लिए ही शास्त्रकारों ने कहा है कि—'यत्र-यत्र मनोयाति तत्र-तत्र समाधय।' अर्थात् देहाभिमान नष्ट होने पर ध्यान अनुभव पुष्ट हो जाने पर योगी का मन जहां-जहां जाता है, वहां-वहां उसे अपने इष्ट के ही दर्शन होते हैं। चैतन्य महाप्रभु कदम्ब के पेड़ों से लिपट कर इसी अवस्था में चिल्लाते थे—हा कृष्ण ! हा कृष्ण !, श्रीकृष्ण की माधुरी मूर्ति हृदय मे यदि पक जाय तो 'जित देखो तित श्याममयी' की स्थिति बन जाती है। ध्यान-निष्ठ योगी के जीवन में अनेक चमत्कार होने लगते हैं।

यं यं चिन्तयते कामम्
तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।

वह जिस किसी चीज की कामना करता है, उसे वह प्राप्त हो जाती है और उसके पुण्याशय का विकास होने लगता है तथा क्लेश संस्कार क्षीण होने लगते हैं।

ध्यान के परिणाम स्वरूप जो संस्कार बनते हैं उनसे कर्माशय तैयार नहीं होता। अतः कर्म श्रृंखला का विस्तार रुक जाता है।

ध्यान की स्थिरता प्राप्त होने पर चित्तमें संचित संस्कार दग्ध होने लगते हैं जिससे चित्त का सारा भार हल्का हो जाता है। बड़े से बड़े विघ्न भी उसे विचलित नहीं कर पाते। स्थितप्रज्ञ अवस्था में एक अद्भुत आनन्द का अनुभव होता है जिससे सांसारिक विषयों से मन स्वतः ही हट जाता है और अपने अन्दर ही योगी आनन्दित रहने लगता है। वह "आत्मना आत्मानं पश्यन् आत्मनितुष्यति।" (गीता ६/२०) अपनी आत्मा में ही आत्म-स्वरूप का दर्शन कर उसमें मगन बना रहता है। तीव्र संवेग के साथ आत्मतत्त्व का ध्यान करने से इतना महान पुण्य हो जाता है कि उस पुण्य का कभी अन्त नहीं होता। उसके प्रताप से उसके पूर्वज भी कर्म-बन्धनों से छूट जाते हैं। अतः अपने इष्ट के ध्यान में मस्त रहने का अभ्यास करने की कला सीख लेने पर जीवन चिन्ता रहित हो सकता है। अपने आत्म-स्वरूप की सहजावस्था को पाकर जीवन कृतकृत्य बन सकता है। उपनिषद् में निम्न लिखित मन्त्र द्वारा इसी सिद्धान्त का निर्देश किया है—

यदा पश्यः पश्यति रुक्म वर्णं
कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥

अर्थात् जीव जब सच्चिदानन्दघन परम सुन्दर जगत-रचयिता पुरुषोत्तम ब्रह्म का दर्शन प्राप्त करता है तो उसे उसके फलस्व-रूप ज्ञान प्राप्त हो जाता है जिससे वह अपने पुण्य-पापों के कर्मपाश को काट कर निर्मल हो ब्रह्म-स्वरूप बन जाता है। 卐

❀ जप-विधि ❀

जप का अर्थ किसी मन्त्र या शब्द या शब्द-समुदाय का बार-बार दुहराना ही नहीं है, प्रत्युत उसके साथ अर्थ-भावना = अर्थ विचार तथा तदनुसार अपना आचार बनाना भी है। अर्थात् जप में वाणी, मन तथा काया तीनों का सहयोग आवश्यक है। हमने कहा, परमेश्वर 'भुवः'—सर्वज्ञ है, किन्तु यदि हमने व्यव-हार से उसकी सत्ता से नकार ही दिखाया, तो हमारा जप तो नहीं हुआ। अर्थात् गायत्री मन्त्र के जप के साथ दिन भर का हमारा आचरण उसी के अनु-सार होना चाहिए।

जप करते समय जिह्वा नहीं हिलनी चाहिए। जिह्वा के हिलाये बिना मन्त्र का जप करते हुए हमारे कान वाणी से अनुच्चारित शब्दों में होने चाहियें। यदि मन हमारे कानों को कहीं दूसरी ओर ले जाए तो हमें पुनः आरम्भ से गायत्री मन्त्रका प्रारम्भ करना चाहिए। इस विधि से यह संभव है कि घण्टा भर बैठे रहने पर भी एकबार भी जप पूरा न हो सके, किन्तु शान्ति का अनु-भव होने लग जाएगा।

—स्वामी वेदानन्द

महाभारत में मन्त्र-जप तथा उसका महत्व

✽ श्रीमती डा० राजकुमारी त्रिखा

योगदर्शन में यमनियमों की साधना पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। योग-दर्शन द्वारा प्रतिपादित नियम पांच हैं, जिनमें से स्वाध्याय एक अतिमहत्त्वपूर्ण नियम माना गया है। स्वाध्याय का अर्थ है—प्रणव आदि पवित्र नामों का जप अथवा मोक्षप्रद शास्त्र श्री मद्भगवद्गीता उपनिषद् आदिका अध्ययन। भगवान् पतञ्जलि कहते हैं—

प्रणवादिपवित्राणं जपः

मोक्षशास्त्राध्ययनं वा।

कहा जाता है कि स्वाध्याय करने से सिद्ध ऋषि आदि स्वाध्यायशील व्यक्ति के सामने जाते हैं तथा उसके इच्छित कार्य कर देते हैं। योगदर्शन स्वयं प्रमाण है—

स्वाध्यायादिष्ट देवतासम्प्रयोगः।

इसके अतिरिक्त स्वाध्याय द्वारा मन की एकाग्रता बढ़ती है तथा ध्यानयोग में सहायता मिलती है। अतः कहा गया है—ध्यानयोग द्वारा स्वाध्याय का मनन करना चाहिये क्योंकि स्वाध्याय व योग इन दोनों की सम्पत्ति से ही परमात्मा का दर्शन होता है।

स्वाध्यायाद्योगमासीत

योगात्स्वाध्यायमामनेत्।

स्वाध्याययोगसम्पत्त्या

परमात्मा प्रकाशते॥

श्री मद्भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण भगवान ने "यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि" कहकर मन्त्र जाप रूपी स्वाध्याय को ईश्वर का रूप मानकर महत्वपूर्ण बताया है। प्रस्तुत लेख में हिन्दू धर्म के धर्मशास्त्रग्रन्थ महाभारत के आधार पर मन्त्र-जप की विधि व महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

शरीर तथा मन को पूर्णतया नियन्त्रित रखते हुए मन्त्र जप करना चाहिये। सर्वप्रथम जपकर्ता को कुशासन पर बैठना चाहिये। उसे अपने हाथ में, शिखा में, तथा मध्यभाग में

कुशा रखनी चाहिये। विषयों से अनासक्त रह कर मन में समत्व भाव रखे। मन का मन में ही लय करे। फिर बुद्धि के द्वारा परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करे तथा सर्वहितकारी वेद-संहिता का एवं प्रणव तथा गायत्री मन्त्र का जप करे। फिर समाधि में स्थिति होने पर मन्त्रजाप भी त्याग दे। महाभारतकार के ही शब्दों में—

कुशोच्चनिषण्णः सन्
कुशहस्तः कुशैः शिखी।
कुशैः परिवृत स्तस्मिन्
मध्ये छन्नः कुशैस्तथा।
विषयेभ्यः नमस्कुर्याद्
विषयान्न च भावयेत्।
साम्यमुत्पाद्य मनसा
मनस्येव मनो दधत्॥
तद्धिया ध्यायति ब्रह्म
जपन् वै संहितां हिताम्।
संन्यस्यत्यथवा तां वै
समाधौ पर्यवस्थितः॥

इस प्रकार मन्त्र जप द्वारा प्राप्त हुए बल का आश्रय लेकर साधक अपने ध्यान को सिद्ध कर लेता है। वह शुद्ध चित्त होकर तप के द्वारा मन व इन्द्रियों को जीत लेता है तथा रागद्वेष से मुक्त होकर सर्दी गर्मी आदि द्वन्द्वों से परे हो जाता है। न तो वह शोक करता है न ही अनुराग। वह कर्मों का कारण व कर्त्ता होने के अभिमान से बच जाता है। (द्रष्टव्य महाभारत शान्तिपर्व अध्याया ? श्लोक १७-२३) उस निरहंकारी का मन न तो स्वार्थ में संलग्न होता है, न ही वह किसी का अपमान करता है तथा न ही वह अकर्मण्य बन कर रहता है। ध्यानक्रिया ही उसका नित्यकर्म है जिसके द्वारा ध्यानावस्था में वह तत्त्व का निश्चय कर लेता है। ध्यान में समाधिस्थ होकर क्रमशः वह ध्यानरूप क्रिया का भी त्याग कर देता है। मौलिक अंश द्रष्टव्य है—

ध्यानक्रियापरो युक्तो
ध्यानवान् ध्याननिश्चयः।
ध्याने समाधिमुत्पाद्य
तदपि त्यजति क्रमात्॥

उस अवस्था को प्राप्त हुआ योगी सर्वत्यागरूप निर्बीज समाधि से प्राप्त होने वाले दिव्य परमानन्द का अनुभव करता है। वह योगसिद्धियों से भी विरक्त हो प्राणों का परित्याग कर विशुद्ध परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप में प्रविष्ट हो जाता है। अथवा यदि वह परब्रह्म का सायुज्य नहीं प्राप्त करना चाहता तो देवयान मार्ग पर स्थित हो ऊपर के लोकों में गमन करता है। पुनः इस संसार में जन्म नहीं

लेता। इसी की पुष्टि में कहा गया है—"नैव क्वचन जायते"। महाभारत आत्मस्वरूप का बोध हो जाने से वह रजोगुण से रहित निर्मल शान्तस्वरूप योगी अमृतस्वरूप विशुद्ध आत्मा को प्राप्त होता है। अन्य व्यक्तियों को भी भवसागर से पार कर मोक्षभागी बना सकता है। इसी तथ्य की पुष्टि में एक अत्यन्त सरस व सार्थक कथा दी गई है।

कहते हैं हिमालय में एक अत्यन्त धर्मात्मा, विद्वान्, बुद्धिमान ब्राह्मण रहता था जो मन्त्र-जप में तत्पर था। अर्थज्ञानपूर्वक वह इन्द्रिय-जयी मन्त्रजाप करता रहा। एक हजार वर्षों बाद देवी सावित्री ने उसे दर्शन देकर वरदान मांगने को कहा। ब्राह्मण ने वर मांगा कि मेरा मन जप में लगा रहे। मन की एकाग्रता बढ़ती रहे। देवी ने उसकी इच्छा पूरी की। तत्पश्चात् धर्म ने उसे दर्शन दिये। यम मृत्यु काल, काम क्रोध सभी ने उसकी परीक्षा ली। इसी बीच एक इक्ष्वाकु वंश के राजा वहां आ गये तथा उस ब्राह्मण ने उसका आदर सत्कार करके पूछा कि वह क्या चाहता है? राजा को कुछ धार्मिक फल के प्रति लोभ आ गया तथा उसने ब्राह्मण के बार-बार आग्रह करने पर उसके जप का फल मांग लिया। तत्पश्चात् उस फल को ग्रहण करने में उसे संकोच होने लगा, परन्तु अन्ततः ब्राह्मण के आग्रह पर उसे ब्राह्मण का जप फल स्वीकार करना ही पड़ा।

तत्पश्चात् वे दोनों ध्यान में बैठे। दोनों ने एक साथ मन को विषयों से हटाकर पांचों प्राणवायुओं को हृदय में स्थापित किया, मन को प्राण व अपान में मिलाया। भौंहों के नीचे नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखते हुए मन-सहित प्राण अपान को भौंहों के मध्य स्थिर किया। इस प्रकार मन को जीतने के बाद प्राणसहित मन को सुषुम्णा मार्ग द्वारा मूर्धा में स्थापित कर दिया। वे समाधिस्थ हो गये। फिर ब्राह्मण के तालुदेश (ब्रह्मरन्ध्र) का भेदन कर एक ज्योतिर्मयी विशाल ज्वाला निकली व स्वर्ग की ओर चल दी। वह तेज पुञ्ज ब्रह्मा के पास पहुँचा तथा ब्रह्माजी ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया व कहा योगियों को जो फल मिलता है वही फल जापकों को भी मिलता है—

जापकैस्तुल्यफलता
योगीनां नात्र संशयः।

बल्कि यूं कहो कि जापकों को अधिक अच्छा फल मिलता है। यही सूचित करने के लिये मैंने उठकर तुम्हारा स्वागत किया है। अब तुम मेरे भीतर भीतर सुखपूर्वक निवास करो। राजा इक्ष्वाकु भी उस ब्राह्मण के समान ब्रह्मा जी के मुख में प्रविष्ट हो गये। मन्त्र-जापक ब्राह्मण ने राजा को भी मोक्षभागी बना दिया।

इस कथा से मन्त्र-जप की महिमा ज्ञात

होती है। परन्तु जापक को विशेष सावधानी बरतनी चाहिये। जो जापक जपनियमों का ठीक-ठीक पालन नहीं करता, एकदेश का ही अनुष्ठान करता है वह नरक में पड़ता है। मन्त्र-जप के प्रति पूर्ण निष्ठा होनी चाहिये। अवहेलनापूर्वक, तथा (जप से) प्रेम व प्रसन्नता रहित मन से किया हुआ जप भी निरर्थक है व नरक में ले जाता है। जप के कारण अपने में बड़प्पन का अभिमान करने वाले सभी जापक नरकगामी होते हैं। दूसरों का अपमान करने वाला जापक भी नरक को जाता है। फल की इच्छा रखने वाला, जापक इच्छित फल के उपयुक्त नरक में जाता है। जापक यदि अणिमादि योगसिद्धियों में अनुरक्त हो जावे तो उसी नरक (बन्धन) में फंसा रहता है। जो जापक विषयासक्ति पूर्वक जप करता है, वह इच्छित फल के अनुरूप शरीर को प्राप्त होकर पतित होता है। विषय भोगों में आसक्त व चञ्चल मन से जप करने वाला विनाशशील गति को प्राप्त होता है अथवा नरक में गिरता है अथवा स्वर्गादि विचलित स्वभाव वाले लोकों को प्राप्त करता है। या तिर्यक योनियों में जन्म लेता है। मन्त्रजप का अनुष्ठान करने का निश्चय करके, उसे पूरा न करने वाला जापक भी नरक भोगता है। यहां नरक प्राप्ति से तात्पर्य है। नाना योनियों में जन्म ग्रहण। क्योंकि परमपद मोक्ष के इच्छुक जापक के लिये स्वर्ग प्राप्ति, नाना दिव्य भोगों की उपलब्धि सभी कुछ पुण्य काल पर्यन्त स्थायी होने से क्षणभंगुर है व नरक तुल्य है। अतः मोक्ष के इच्छुक जापक को पूर्णतया एकाग्र मन से, व भोगविमुख होकर मन्त्र-जप करना चाहिये। तभी मन्त्र-जप का उचित फल मिल सकता है। ✿✿

❀ हिचकी का उपचार ❀

हिचकी पेट की खराबी से होती है। श्वांस को कुछ देर के लिए रोक लेने से मामूली हिचकी आनी बन्द हो जाती है। जीभ को बाहर खींचकर दो-एक मिनट तक हाथ से पकड़े रहने से भी हिचकी बन्द हो जाती है। एक गिलास गुनगुना जल पी लेने से भी हिचकी शान्त हो जाती है। गहरी सांस लेने या धीरे-धीरे पानी चूसने से भी हिचकी में लाभ होते देखा गया है।

प्राणघातक हिचकी में उपवास करके पसलियों पर लाल बोतल का सूर्य-तप्त तेल मलना चाहिए तथा गहरी नीली बोतल का सूर्य-तप्त तेल तीन भाग और लाल बोतल का वैसा ही जल एक भाग मिलाकर दिन में ६ से ८ बार पिलाना चाहिए। मात्रा आधी छटांक से अधिक न होनी चाहिए। ✿✿

निर्गुण काव्य में गुरु-महिमा

डा० श्री जीवनलाल शर्मा

जीवात्मा को परमात्मा की उत्कृष्टतम देन है सद्गुरु। भारतीय संस्कृति में गुरु का अत्यधिक महत्व है। हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० प्रेमनारायण शुक्ल के शब्दों में "गुरु सच्चे अर्थों में जीवन का पथ-प्रदर्शक है। उसके अभाव में हमारी समस्त साधना सम्बन्धी क्रियायें व्यर्थ सिद्ध होती हैं। एक सच्चे गुरु की उपलब्धि जीवन-वरदान बनकर आती है।" ऐसा नहीं कि केवल निर्गुण अथवा सगुण सन्तों ने अपितु सभी सम्प्रदायों ने गुरु के महत्व को स्वीकार किया है। वेदों में भी गुरु-महिमा का प्रतिपादन करते हुए गुरु को त्रिदेव कहते हुए साक्षात् ब्रह्म कहा है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

विभिन्न सन्तों ने मुक्त कण्ठ से गुरु-महिमा का गायन किया है। सन्तों ने व्यापक धर्म में सतगुरु का अति विशिष्ठ स्थान है। सतगुरु ही साधक के जगत में सबसे बड़ा द्रष्टा और सृष्टा है। कतिपय सन्तों की बानियों का यहां उल्लेख कर देना समीचीन होगा—

गुरु बिनु भव नहिं भंजनि हारा।
सत तरनी भव सिंधु उबारा॥

—संत दरिया साहेब (बिहार)

जग जीवन घट घट बसै,
करम करावन सोय।
बिन सतगुरु केसो कहै,
केहि बिधि दरसन होय॥

—संत केशवदास

गुरु के चरन की रज लैके,
दोउ नैन के बीच अंजन दीया।

—संत यारी

सतगुर सम कोउ है नहीं या जग में दातार।
देत दान उपदेस सों करै जीव भव पार॥

—संत दया

बार-बार के अवन गवन में,
कर्म भर्म की धार।
खोजत-खोजत सतगुरु पाये,
उतरि परो भव पार॥

—संत बुल्ला

कोटि करैं जो कोय, सतगुरु बिन प्रभु ना मिलैं।

—संत भीखा

गुरु के बचन करै परतीत,
सोई सिद्ध जाय जगजीत ।।
—संत मलूकदास

गुरु के बचन जस कामधेनु ।
—संत गुलाल साहिब

और हू कहां लौं कछु, मुख तें कहूं बनाय।
गुरु की तो महिमा, अधिक है गोविंद तें ।।
—संत सुन्दर

इस प्रकार गुरु के प्रति भक्ति का उत्कर्ष निर्गुण सम्प्रदाय में जिस कोटि का देखने को मिलता है वह अन्यत्र सुलभ नहीं है। क्योंकि ज्ञानाश्रयी कवियों का विश्वास है कि लक्ष्य-सिद्धि बिना गुरु के सम्भव नहीं है। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य विद्वान स्व० डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने गुरु-महिमा का प्रतिपादन इस प्रकार किया है—"बिना गुरु की सहायता के कोई प्रत्यावर्तन की यात्रा कर ही नहीं सकता। अध्यात्म का बीज जो धरती में पहले से मौजूद है तभी फूल ला सकेगा और फल भी देगा, जब गुरु बादल की भांति आकर उस पर अवसर के अनुकूल अपने उपदेशों की वृष्टि कर दे।" इसीलिए तो कबीर ने गुरु को ब्रह्म से भी श्रेष्ठ और अधिक पूज्य माना है—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पांय।
बलिहारीगुरु आपणे, जिन गोविंददियो बताय।

इतना ही नहीं वे गुरु की महिमा को अनिर्वचनीय मानते हैं—

सब धरती कागद करूं,
लेखनि सब बनराय।
सात समुंद की मसि करूं,
गुरु गुन लिखा न जाय ।।

इसलिए जो गुरु-द्रोह करते हैं और गुरु को रुष्ट करते हैं, उनकी आयु, लक्ष्मी एवं ज्ञान का नाश हो जाता है। देखिये क्या मीमांसा हो रही है—

कर्मणा मनसा वाचा
गुरोः क्रोधं न कारयेत्।
तस्य क्रोधेन दह्यन्ते
आयुः श्रीज्ञान सत्क्रियाः ।।

अतः जो लोग गुरु के इस महत्व को नहीं जानते हैं उन्हें कबीर ने अन्धा कहा है—

कबीर ते नर अन्ध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ।।

संत धरमदास ने भी गुरु-पद को सर्वोच्च एवं सर्व-श्रेष्ठ कहा है जिसके समक्ष अन्य सब तुच्छ हैं—

गुरुपद अहै सबन ते भारी।
चारो वेद तुले नहिं गुरुपद,
ब्रह्मा विष्णु और ब्रह्मचारी ।।

इतना ही नहीं, शबरी की साक्षी देकर उन्होंने गुरुको चारों वर्णों से ऊँचा बताया है-

सतगुरु चारिउ बरन से ऊँचे ।
ना मानों तौ साखि बताओं ,
सेवरी के फल रूचे ॥

सन्तों में सहजोबाई का एक विशिष्ट स्थान है । उन्होंने गुरु के विभिन्न गुणों के आधार पर उनके चार प्रकार बताये हैं—

गुरु हैं चार प्रकार के, अपने अपने अंग ।
गुरु पारस दीपक गुरु, मलयागिरि गुरु भृंग॥

इससे यह सिद्ध है कि गुरु शरण में जाने से सर्वोन्मुखी कल्याण होता है । एक विद्वान के अनुसार "गुरु शिष्य के अन्दर अपने संकल्प से प्रभाव उत्पन्न करता रहता है । कभी-कभी प्रभाव की यह क्रिया गुरु के हृदय से निकल-कर शिष्य के हृदय में प्रविष्ट हो जाती है । कभी गुरु मन का भी प्रयोग करते हैं और शिष्य के मन को अपनी मानसिक शक्ति द्वारा स्फूर्ति एवं ओज से परिपूर्ण कर देते है । कभी ऐसा भी होता है कि गुरु शिष्य नेत्रों में अपनी नेत्र-ज्योति डालकर उसे ज्योतिर्मय कर देते है । शिष्य गुरु के इस अनुग्रह से, शक्तिपात से निहाल हो जाता है ।"

सन्त दादू ने भी गुरु का अत्यन्त महत्व बताया है । उनके अनुसार घर में एक लाख चन्द्रमा और करोड़ सूर्य मिल जाने पर भी बिना गुरुके अन्धकार नष्ट नहीं हो सकता है—

इक लखचंदा आणि घर, सूरज कोटि मिलाइ ।
दादू गुरु गोविंद बिन, तौ भी तिमर न जाइ ॥

सन्तों ने सतगुरु को ब्रह्म का पर्याय माना है । गुरु के महत्व को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने जहां गुरु को ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश कहा है वहां गुरु को अन्य अनेक प्रकार से सम्बोधित किया है, जैसा कि निम्न साखियों से स्पष्ट है—

गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है ,
गढ़ि-गढ़ि काढ़ै खोट ।
अन्तर हाथ सहार दै ,
बाहर बाहै चोट ॥

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।
सहजो सिष ऐसा भला, जैसे माटी होय ।
आपा सौंपि कुम्हारकूँ, जो कछु होय सो होय॥
सहजो गुरु ऐसा मिले, जैसे धोबी होय ।
दे दे साबुन ज्ञान का, मल मल डारै धोय ॥
सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट ॥
भव सागर में डूबतां, सतगुर काढ़े आइ ।
दादू खेवट गुर मिल्या, लीये नाव चढ़ाइ ॥
दादू मिल्या गुर गारुड़ी, निरविष कीया सोइ ॥
सतगुरु पारस रूप है, हमरी लोहा जात ॥
हम तो लोहा कठिन है, सतगुरु बने लुहार ॥
सहजो गुरु रंगरेज सा, सबहीं कूँ रंग देत ॥

उपरोक्त कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि मानव जीवन का एक मात्र लक्ष्य सत-गुरु प्राप्ति है । गुरु-कृपा से मानव लौकिक एवं पारलौकिक समस्त आकांक्षाओं की पूर्ति कर सकता है । अतः उसे सब ओर से ध्यान हटा-

मन्त्र-योग

श्री चन्द्रकिशोर दुबे प्राचार्य श्री ठक्कर बाबा इंटर कालेज कालपी, जालौन

मन्त्र योग के आचार्य देवर्षिनारद, वशिष्ठ, कश्यप अगस्त, भरद्वाज, गर्ग भृगु, बृहस्पति, शुक्र शाण्डिल्य, महर्षिअङ्गिरा, आदि हैं। मन्त्र योग का लक्ष्य सगुण ब्रह्म का साक्षात् दर्शन करना है।

मन्त्र योग के शास्त्रों के अनुसार १६ अङ्ग होते हैं जो इस प्रकार हैं:—(१) भक्ति (२) शुद्धि (३) आसन (४) पञ्चाङ्ग सेवन (५) आचार (६) धारणा (७) दिव्य देश सेवन (८) प्राणक्रिया (९) मुद्रा (१०) तर्पण (११) हवन (१२) बलि (१३) याग (१४) जप (१५) ध्यान (१६) समाधि।

प्रथम भक्ति के दो रूप हैं। (१) गौणी भक्ति (साधन काल की भक्ति) (२) परा (सिद्ध अवस्था की भक्ति) गौनी भक्ति के अन्तर्गत वैधी भक्ति जिसे नवधा भक्ति कहते हैं। (१) श्रवण (२) कीर्तन (३) स्मरण (४) पाद सेवन (५) अर्चन (६) वन्दन (७) दास्य (८) सख्य (९) आत्म-निवेदन। इसमें १ से लेकर ६ तक प्रथम-अवस्था की भक्ति होती है। और बाद वाली तीन ७ से ९ क्रम संख्या वाली परिसमाप्ति रागात्मिका में होती है। नवधा भक्ति की व्याख्या सन्त तुलसी दास ने रामायण में भली प्रकार वर्णित की है।

[पिछले पृष्ठ का शेष]

कर गुरु-भक्ति में अपनी सारी शक्ति लगा देना चाहिए। भागवत का एक श्लोक है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारं।
मयाऽनुकूलेन नभःस्वतेरितं पुमान्
भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।

अर्थात् संसार सागर को पार करने हेतु गुरु-कृपा आवश्यक है। यदि इसे मानव प्राप्त नहीं करता तो वह आत्म-हत्यारा कहा जायेगा। अतः सतगुरु की शरण में जाकर मनुष्य अपने जीवन को सफल बनावे। यही मानव-जीवन का एक मात्र उद्देश्य है। यही उसकी जीवन-यात्रा की अंतिम मंजिल है और यही मानव-जीवन का हेतु है।

रागात्मिका भक्ति का श्री मद्भा० स्कन्ध ११ में भली प्रकार वर्णित है। "रागात्मिका भक्ति के उदय होने से साधक का चित्त पुलकित हो जाता है। आंखों से आनन्द अश्रुधारा प्रवाहित होती है और तमाम साधनों के फलस्वरूप भक्त को परम शान्ति प्राप्त हो जाती है।

परा भक्ति-स्वरूप ज्ञान दोनों एक ही है निर्विकल्प समाधि, पर वैराग्य रूप की स्थिति एक सी है। कोई भेद नहीं है। इस स्थिति में भक्त समस्त चराचर को भगवानमय देखता है। इसी रागात्मिका में सात गौण रस जिन्हें मलिन रस भी कहते हैं और सात मुख्य रस जिन्हें शुद्ध रस भी कहते हैं।

गौण रस के उदाहरण में (१) हास्य—गोपाल बालक (२) वीर—भीष्म पितामह (३) करुण—दशरथ (४) अद्भुत—बलि अर्जुन यशोदा विराटरूप दर्शन, (५) भयानक—कंस [६] वीभत्स—ऊधासुर [७] रौद्र—इन्द्र।

मुख्य रस के उदाहरण में [१] दास्य—श्री हनूमान जी [२] सख्य—अर्जुन, उद्धव [३] वात्सल्य में दशरथ, कौशिल्या, नन्द-यशोदा [४] कान्ता—व्रज गोपी (५) आत्म निवेदन—श्री नारद [६] गुण कीर्तन में श्री व्यास जी [७] तन्मय आसक्ति श्री हरि, श्री हर।

मन्त्र योग का दूसरा अङ्ग शुद्धि है। इससे शरीर, मन, दिशा तथा स्थान की शुद्धि होती है। शरीर स्नान सात प्रकार के हैं— (१) मान्त्र स्नान—जल से (२) भौम स्नान—गमछे से अङ्ग पोंछने से (३) आग्नेय—भस्म लगाने से (४) वायव्य—गोरज स्पर्श करने से [५] दिव्य सूर्य दर्शन के होते हुए वर्षा में स्नान करने से [६] वारूण्य—तालाब, नदी में गोता लगाने से। [७] मानस—प्रभु के रूप का मन में ध्यान करने से।

मन की शुद्धि दैवी सम्पत्ति के अभ्यास से जिसमें इन्द्रिय संयम, भयशून्यता, चित्त प्रसन्नता, दान, यज्ञ, वेदपाठ, तप, सत्य, अहिंसा, चंचलरहित, धैर्य, क्षमा, चित्त की शान्ति आदि से होती है।

दिशा की शुद्धि दिन में पूर्व या उत्तर तथा रात्रि में उत्तर मुख बैठकर पूजा होती है।

स्थान शुद्धि पीपल, अशोक, बरगद, बिल्वा आंवला, गोमय आदि से सम्बन्ध रखती है।

बाहर की शुद्धि से आरोग्य, इष्ट देव की कृपा तथा आत्म प्रसाद और मन की शुद्धि से इष्ट देव को दर्शन तथा समाधि प्राप्त होती है।

मन्त्र योग का तीसरा अङ्ग आसन है।

जिसमें स्वस्तिक तथा पद्मासन आते हैं परन्तु सिद्धासन भी हो सकता है। आसन के सम्बन्ध में श्री गीताजी में छठे अध्याय में ११ से १४ श्लोक तक भली प्रकार समझाया है। श्री मद्भागवत के एकादश स्कन्ध, अध्याय १४ में भी वर्णित है। आसन से प्रभु का सान्निध्य प्राप्त होता है।

मन्त्र योग का चौथा अङ्ग पञ्चाङ्ग सेवन है। अपने-अपने इष्टदेव के अनुसार गीता, सहस्त्र नाम, स्तव, कवच, हृदय का पाठ करना चाहिये। इससे पाप रहित होकर योग सिद्धि को प्राप्त होता है।

मन्त्र योग का पांचवा अङ्ग आचार है। यह तीन प्रकारका होता है– [१] दिव्य [२] दक्षिण [३] वाम। क्रमशः सतोगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी साधनाओं में प्रयोग होता है।

मन्त्र योग का छठा अङ्ग धारणा है – [१] बहि [२] अन्तः बाहर के पदार्थों में मूर्ति, विग्रह, चित्र आदि तथा अन्तर्जगत के विषयों में धारणा अन्तर धारणा कही जाती है। इससे दिव्य देश में इष्टदेव का आविर्भाव, मनोवांछित कर देते हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस इसके उदाहरण हैं।

मन्त्र योग का सातवां अङ्ग दिव्य देश सेवन है। दिव्य देश १६ हैं। धारणा की सिद्धि होने पर भक्ति, आचार, प्राण संयम, जप सिद्धि, देवता सान्निध्य दिव्य देश में दैवी शक्ति का आविर्भाव और इष्टदेव दर्शन दिव्य देश में होता है।

मन्त्र योग का आठवां अङ्ग प्राणक्रिया है। प्राणायाम ध्यान का सहयोगी है। इसके पांच प्रकार हैं:— [१] प्राणायाम (२) करन्यास (३) अङ्ग न्यास (४) मातृकान्यास (५) ऋष्यादिन्यास।

सहित प्राणायाम मन्त्रयोग में सहायक है। इसमें पूरक, कुम्भक तथा रेचक मन्त्र के साथ साधना करने से होता है।

भगवान श्री कृष्ण ने श्री मद्भागवत के एकादश स्कन्ध में १० प्राणायाम प्रातः १० प्राणायाम मध्यान्ह तथा १० प्राणायाम सांय करने की आज्ञा प्रदान की है।

मन्त्र योग का नवां अङ्ग मुद्रा है। अपने-अपने इष्टदेव की मुद्रायें अलग-अलग होती है। मुद्रा प्रदर्शन से इष्टदेव प्रसन्न होते हैं। जैसे श्रीराम धनुष, वाण आदि। श्री कृष्ण-वेणु, कदम्ब फल। श्री विष्णु-शंख चक्र आदि श्री महादेव-त्रिशूल, माला, वर, अभय, कपाल, डमरू आदि। श्री गणेश दन्त, पाश, अंकुश, विघ्न परशु, लड्डुक आदि। श्री सूर्य-पद्म मुद्रा। इसी प्रकार दुर्गा जी, लक्ष्मी जी, अग्नि देव, तारा त्रिपुर सुन्दरी, श्यामा देवी आदि की होती है। मन्त्र योग का दसवां अङ्ग तर्पण

है। तर्पण से अपने इष्ट देव और देवी-देवताओं की तृप्ति होती है। पृथक-पृथक काम्य कर्मों में तर्पण की सामग्री भी अलग-अलग है।

मन्त्र योग का ग्यारह वां अङ्ग हवन है। पहिले १६ आहुति मूल मंत्र से अपने इष्ट देव की फिर अन्य देवी देवताओं के अपने इष्ट देव को अङ्गीभूत जानकर हवन करना चाहिये। नित्य होम से इष्ट देव प्रसन्न होते हैं।

मन्त्र योग का बारहवां अङ्ग वलि है। वलि से इष्ट देव प्रसन्न होते हैं। और विघ्नों की शान्ति होती है। आत्म वलि से अहं का नाश, काम-क्रोध की वलि से दिव्य अनुभूति, उत्तम फलों की वलि इष्ट देव को देनी चाहिये। हिंसा रहित वलि होनी चाहिए जीवधारियों को वलि देने का तात्पर्य है कि उन्हें खाने को देना चाहिए।

मन्त्र योग का तेरहवां अङ्ग याग है। याग दो प्रकार का है (१) अन्तर्याग (२) वहिर्याग। इष्ट देव की पूजा के लिए पञ्चोपचार, दशोपचार, षोडशोपचार और एक विंशति उपचार का वर्णन है। जो मानसिक तथ्य वहि पूजा में होता है।

श्री राम उपासक के लिए अगस्त संहिता अध्याय २३ में मानसिक पूजा के लिए ३१ उपचार बताये हैं। याग से अखण्ड फल तथा कैवल्य की प्राप्ति होती है। उपयाग---ब्रह्मयाग और जीवयाग को उपयाग कहते हैं। वेद, स्मृति, पुराणों का पाठ ब्रह्मयाग और ब्राह्मण अतिथि और समस्त जीवधारियों का भोजन, वसन, जल आदि देना जीवयाग है। इससे लोक और परलोक में अनन्त कल्याण प्राप्त होता है।

मन्त्र योग का चौदहवां अङ्ग जप है। यह तीन प्रकार का है (१) वाचिक—जो दूसरों को सुनाई दे। (२) उपांशु—जो केवल साधक को सुनाई दे। (३) मानस—जो साधक को भी सुनाई न दे। वाचिक से उपांशु सौ गुना तथा उपांशु से मानस सौ गुना श्रेष्ठ होता है। जल्दी जप करने से धनक्षय और विलम्ब से जप करने से रोग होता है। अतः मध्यम वृत्ति से जप करे। मन्त्र जप से हृदय की ग्रंथि खुलती है।

जप में माला का भी अलग-अलग महत्व है। मन्त्र योग का पन्द्रहवां अङ्ग ध्यान है। अपने-अपने इष्ट देव के रूप का मन से ध्यान करना चाहिए। ध्यान से समाधि प्राप्त होती है। ध्यान से ही बन्ध और ध्यान से ही मोक्ष होता है। आत्मा को वश में करने का उपाय ध्यान ही है। इसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

मन्त्र योग का सोलहवां अङ्ग समाधि है। मन्त्र सिद्धि के साथ देवता में मन लय होने से जब मन, मन्त्र और देवता का स्वतन्त्र बोध नहीं रहता तीनों एक दूसरे में लय हो जाता है तभी ध्याता, ध्यान ध्येय रूपी त्रिपुरी का लय होता है। इसमें आनन्द अश्रु, रोमाञ्च होता है। मन लय को प्राप्त होता है समाधि का उदय होता है। समाधि प्राप्त साधक कृत कृत्य हो जाता है। योगाधिराज योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज और योगयोगेश्वर आनन्द कंद अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज हम गुरु भाईयों को ध्यान और समाधि का लाभ दें यही का विनय है। ✿✿

बदलते मौसम की बीमारी से

卐 बचाव-व-इलाज 卐

❀ श्री पं० रामस्वरूप शास्त्री, कायाकल्प कैन्सर अनुसंधान केन्द्र, हरियाणा

भारत में अन्य देशों की अपेक्षा छः ऋतुयें हैं जो अपने-अपने समय पर अपना-अपना स्वरूप प्रकट करती हैं। हमारा वर्ष बसन्त ऋतु से प्रारम्भ होता है, इसीलिए इसे ऋतुराज कहते हैं। बसन्त के बाद ग्रीष्म तथा वर्षा का आगमन होता है। इसी प्रकार बारहों महीनों में दो-दो मास के हिसाब से छहों ऋतुयें अपना क्रम रखती हैं, अर्थात् इनकी एक आवृत्ति एक वर्ष कहलाती है। यह वर्ष सूर्य और चन्द्रमा के दिनों से बनता है। कारण सृष्टि को चलाने वाले विराट पुरुष के ये दोनों नेत्र हैं। "सूर्य सोमात्मकं जगत्" अर्थात् यह संसार सूर्य सोमात्मक ही है। यह दोनों ही प्राणीमात्र में अपना विशेष स्थान रखते हैं। प्राणी निरन्तर श्वास लेता है। ये दोनों नासिका रन्ध्र सूर्य और चन्द्र हैं। प्रातः सूर्योदय के समय यदि चन्द्र स्वर चले तो शुभ सूचक है। यह दोनों निरन्तर २॥ घण्टे में बदलते रहते हैं। इसीसे ठीक २॥ घंटे में हमारा शरीर भी बदलता रहता है। और इसी अनुपात में बाल्यावस्था, जवानी तथा बुढ़ापा आता है तथा अन्त में यह शरीर पंचता को प्राप्त हो जाता है। यह क्रम प्राणीमात्र का है।

यह ऋतु परिवर्तन या यों कहें कि यह मौसम का बदलना नियमित है। जैसे सूर्योदय के बाद सायं रात्रि का आना और रात्रि के बाद सूर्योदय का होना, यह क्रम अनन्त काल से चला आ रहा है और चलता रहेगा। प्राणी आयेंगे और चले जायेंगे। पर यह क्रम बराबर चलता रहेगा। यही संसार का नियम है। अर्थात् एक दिन प्राणी आया है और एक दिन चला जायगा। यह कुछ दिन का समय मानव को समाज सेवा, देश सेवा के लिए मिला है। इस समय को यदि अपने प्रज्ञापराध में व्यर्थ गंवा दिया तो इससे बड़ा अन्य अपराध नहीं।

इन ऋतुओं के परिवर्तन में जो मानव शरीर पर प्रभाव पड़ता है उसे ऋतु परिवर्तन कहते हैं, इसी को दूसरे शब्दों में मौसम का बदलना कहा जाता है। इस बद-

लते मौसम में प्रायः अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इनमें मुख्य प्रतिश्याय (नजला) है। यह मानव को नितान्त कष्ट देता रहता है। घास में छिपे सर्प के समान जब भी समय पाता है, अपना प्रभाव जमा बैठता है। यह हमारे शरीर में रहने वाले सूर्य की विकृति के कारण होता है। अर्थात् नाक द्वारा हरे, पीले, सफेद रंग का लसदार पानी बहने लगता है। व्यक्ति छींकते-छींकते परेशान हो जाता है। हर समय नाक पर रूमाल रखना पड़ता है। प्रातः उठते ही छींकों का दौर शुरू हो जाता है। जब तक काफी पानी न झड़े, तब तक शान्त नहीं होता। यही नजला—अनेक रोगों का कारण बनता है। यदि यह श्वास वाहिनी पर पड़ा तो श्वास (दमा) रोग का कारण बनता है। और यदि फेफड़ों पर पड़ा तो यक्ष्मा T. B. का कारण बनता है। यदि हाथ या पैर की ओर इसका आक्रमण हुआ तो मनुष्य पंगु, लंगड़ा, लकवा, अर्धाङ्गवात का रोगी बन जाता है। यदि इसका प्रभाव हृदय की ओर हुआ तो हृदगति अवरोध (हार्ट फेल) हो जाता है। जो आज बहुतायत से देखा जाता है। और यदि यह मलाशय की ओर गया तो मल शुष्क होकर इसी विष संचित हो कैंसर जैसे महा भयानक रोग का जन्म दाता बन जाता है। इसका ऊर्ध्वगत होना, बालों को असमय में सफेद बना देता है। यदि कानों पर इसका प्रभाव हुआ तो व्यक्ति बहरा बन जाता है। आंखों की स्थिति में यह मोतियाबिन्द का कारण बनता है।

वास्तव में यह प्रतिश्याय (नजला) ही सब रोगों का मूल कारण हुआ। इसका अंकुर उदर विकार है। अर्थात्—

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।

सब रोगों का निदान मलों का कुपित होना है। अब इस निदान के बाद आप इधर ध्यान दीजिये। कार्य से पहले कारण का होना आवश्यक है। हम अपने नित्य के व्यवहार असमय भोजन, अध्यशन, दिनभर बकरी के समान चरते रहते हैं तो आप ही बतलाइये यह इस शरीर पर अन्याय नहीं तो और क्या है? यह पेट कोई कबाड़ी की दुकान तो है नहीं कि जो जी में आया ठूंस दिया।

यह जीवन बहुमूल्य है। राष्ट्र की निधि है इसे व्यर्थ नष्ट करने का दुःसाहस न कीजिये। जिह्वा-लोलुपता के कारण जो व्यक्ति अपने शरीर का ध्यान नहीं रखता वह असमय में ही काल का ग्रास बनता है। जैसे लोकोक्ति है—

बीस कठौती मट्ठा पीवै, बत्तिस रोटी खाय।
ताके मरे न रोइये, घरका दारिद जाय॥

अर्थात् जो अपने स्वास्थ्य को न देख अनाप-सनाप खाता रहता है उसके मरने का कोई शोक नहीं। कारण वह तो अपनी मौत को स्वयं बुला रहा है। अस्तु अब चिकित्सा की ओर ध्यान दीजिये। जो व्यक्ति अपने जीवन को सुखी स्वस्थ दीर्घजीवी बनाना चाहता है। उसे गुरोपदिष्ट नियमों का पालन करना चाहिये। सबसे पहले शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अपनी प्रकृति के अनुकूल व्यायाम करे। योग मार्ग निर्दिष्ट, "जीवन-तत्व" साधन का अभ्यास करे जिससे शरीर नीरोग रहेगा। मान लीजिये कभी कोई रोग आ ही गया तो उसका उत्तम उपचार नेति आदि क्रियाओं द्वारा कर स्वस्थ होना चाहिए।

नेति—प्रतिश्याय (नजला) से बचने के लिए सर्वोत्तम उपाय नेति क्रिया है। सर्व-साधारण के लिए जलनेति अति सुगम है इसके अभ्यास से रोग मुक्ति तथा शरीर स्वस्थ रहेगा।

विधि—

प्रातः नित्य क्रिया से निवृत्त हो कुछ गुन-गुना पानी लीजिये, उसमें थोड़ा नमक मिला दीजिये। फिर उसे चुल्लु में भर कर नाक द्वारा सुडक जाइये। नाक साफ कर अपनी सुविधानुसार तेल या घी नाक में डालिये। यह एक सुगम उपाय है। इस क्रिया के करने से सिर दर्द, नजला असमय में बालों का पकना चश्मा आदि नहीं लगाना पड़ेगा। आपका जीवन सुखकर होगा। अन्य यौगिक क्रियाओं को सीखने के लिए योग प्रशिक्षण केन्द्र आर.के. पुरम् सैक्टर ४ में निःशुल्क लाभ उठा सकते हैं। अन्य भी बहुत से यौगिक केन्द्र हैं। उनसे लाभ उठाइये तथा वृथा शरीर का शोषण करने वाली दवाओं के जाल से बचिये।

मान लीजिये कोई रोग हो ही जाय तो बाजारू गोलियों पर निर्भर न रहिये। जैसे बसों में या मजमे लगाकर बेचने वाले लोग एक रुपये में दस गोली बेचते रहते हैं। यह सस्तापन आपके जीवन का घातक बन सकता है। इसलिए आवश्यकता पर किसी योग्य वैद्य या डाक्टर से परामर्श ले, अपनी प्रकृतिके अनुकूल ही औषधि लीजिये, जिससे आप कष्ट से बच जायेंगे। आज जो समाज की स्थिति है उससे अस्पताल भरे पड़े हैं। आपात-कालीन वार्डों में भी स्थान नहीं। इसका कारण हमारा प्रज्ञापराध है। हम अपने ही दोष से तथा इन्द्रियों के वशीभूत हो रोग भोगते हैं। इनसे बचने के उपाय युक्ताहार-विहार पर ध्यान दीजिये। नजला, सिर दर्द, उदर विकार इनकी चिकित्सा आप घरेलु तरीके से भी कर सकते हैं इनके लिए तुल बनफशा का काढ़ा उपयुक्त है। नजले के बाद

खांसी हो जाती है उसके लिए सितोपलादि चूर्ण, लवंगादिवटी, एलादिवटी का व्यवहार उपादेय है।

आज देहात में क्या शहरों में भी ज्वर (बुखार) का दौर विशेष रूप से देखने में आता है। यह बुखार इतना कष्टकर है कि जिस व्यक्ति को एकबार हुआ तो शरीर को निचोड़ देता है, डाक्टर लोग इन्जेक्शन कुनैन का प्रयोग करते हैं। यह सरकार की ओर से स्थान-स्थान पर बांटी जा रही है परन्तु परिणाम शून्य है। आज की दवाओं से छिड़काव करने पर मच्छर नहीं मरता। जहां यह काटता है, ज्वर अवश्य आता ही है। इसके लिए आप घरेलू चिकित्सा में, (चोकर) को ले उसमें थोड़ा नमक मिला पाव भर पानी में पका लीजिये। आधा पाव रहने पर पीकर सो जाइये। पसीना आकर बुखार उतर जायगा। परन्तु आज का मानव इन पुरानी वस्तुओं पर ध्यान न देकर सुई लगवाने में ही ज्यादा ध्यान देता है। जिससे पैसा देकर रोग खरीदता है। प्रकृति के विरुद्ध चलने से कष्ट ही होगा। अपनी प्रकृति के अनुकूल उपरोक्त क्रियाओं के अवलम्बन से स्वस्थ रहिये।

☼ ☼ ☼ ☼

❀ शंकर-कीर्तन ❀

हे शंकर कूटस्थ अकर्ता, तू अजरामर, अत्ता है,
तेरी परम शुद्ध सत्ता की सीमा-रहित महत्ता है,
जड़ से और जीव से न्यारा जिसने तुझको जाना है,
उस योगीश महाभागी ने पकड़ा ठीक ठिकाना है।

हे अद्वैत, अनादि, अजन्मा, तु हम सबका स्वामी है,
सर्वाधार, विशुद्ध, विधाता, अविचल अन्तर्यामी है,
भक्ति-भावना की ध्रुवता से जो तुझ को अपनाता है,
वह विद्वान, विवेकी, योगी, मनमाना सुख पाता है॥

हे आदित्य, देव, अविनाशी, तू करतार हमारा है,
तेजोराशि, अखण्ड प्रतापी, सबका पालन हारा है,
जो धर ध्यान धारणा तेरी प्रेम-भाव में भरता है,
तू उसके मस्तिष्क-कोष में, ज्ञान-उजाला करता है।

—महाकवि शङ्कर

याचना

घट घट वासी है अविनाशी
कब होगा तेरा दर्शन ।
होगी ना स्वीकार याचना
क्या है दोष बता मेरा ॥

बहुत जानने की कोशिस की
नहीं समझ कुछ भी आया ।
शरणागत तेरे होने पर
दूषित है अब भी काया !!

दीनबन्धु कहलाते हो तुम
पतितों को पावन करते ।
जो श्रद्धा से तुम्हें पुकारे
उसके सारे दुख हरते ॥

मेरी टेर नहीं सुनते हो
युग–प्रभाव से बदल गये !
या मेरे पापों के डर से
अपने प्रण से मुकर गये ॥

मैंने भी व्रत धार लिया है
इधर उधर ना भटकूंगा ।
तेरा हो कर तेरे बल पर
तेरा दर्शन कर लूंगा ॥

श्री रामसजीवनसिंह

साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर

(श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा)

श्रीकृष्ण जन्मष्टमी का पावन पर्व था। योगाचार्य श्री तपोनिधि जी के आश्रम में सत्संगियों की भीड़ एकत्रित होती जा रही थी। श्री तपोनिधि महाराज की जय हो, योग योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र की जय हो, श्री बांके बिहारीलाल की जय हो।" के गम्भीर एवं चित्ताकर्षक घोष से वातावरण आलोड़ित हो रहा था। आश्रम की सीमा आरम्भ होते ही मार्ग के दोनों ओर श्वेत पुष्पों से लदे हुए कदम्ब के वृक्ष सुशोभित थे, जो कि अपनी शीतल एवं मनमोहक सुगन्ध से आगन्तुक भक्तों का श्रम हरते हुए उनका आतिथ्य कर रहे थे। श्री तपोनिधि जी की पर्णकुटी के बाहर एक ऊँचे मञ्च पर योगेश्वर श्री श्याम-सुन्दर का श्री विग्रह एक हिण्डोले पर शोभा-यमान था, जो कि मोतिया, चम्पा, कदम्ब एवं गुलाब के पुष्पों से इस प्रकार सजाया हुआ था ऐसा प्रतीत होता था कि वे अभी बोलने ही वाले हैं। वहां जलती हुई अगरबत्तियों एवं गुग्गुल के मनमोहक धुयें से वायुमण्डल सुवासित हो रहा था।

अन्तेवासी बटुक वर्ग आश्रम की व्यवस्थायें तथा आगन्तुक सत्संगियों को ठहराने की व्यवस्था में लगा हुआ था। दो पीताम्बर-धारी बटुक श्रीकृष्ण की झांकी के आगे चंवर डोल रहे थे। सामने गोबर से लिपे-पुते-विस्तृत आँगन पर स्वच्छ टाट एवं घास की चटाइयां बिछी हुई थीं जिन पर सत्संगी लोग बैठते जा रहे थे "गोविंद बोलो भाई गोपाल बोलो,

राधारमण हरि गोविंद बोलो।" की मधुर संकीर्तन ध्वनि अनवरत चल रही थी। लोग आकर श्रीकृष्ण के श्री विग्रह को सिर नवाकर अपना स्थान ग्रहण करते जा रहे थे और संकीर्तन में सम्मिलित होते जा रहे थे। श्रीकृष्ण की झांकी के बगल में कदम्ब वृक्ष के नीचे एक दूसरा मञ्च बना हुआ था। वह स्थान योगाचार्य जी के लिए सुरक्षित था। सत्संगियों की दृष्टि बार-बार उस ओर आ रही थी। योगाचार्य जी के शुभागमन में विलम्ब का अनुमान कर सत्संगियों ने अधी-रतावश उच्च स्वर में यह गीत अलापना शुरू कर दिया—

तुम ठाकुर हम पुजारी आजा रे सांवरिया।
मन मन्दिर को स्वच्छ कियो अब आकर नाथ सजाओ।
जगमग-जगमग छाये भीतर ऐसी ज्योतिजगाओ।
तुम पर हम बलिहारी आजा रे सांवरिया।
तुम ठाकुर हम पुजारी आजा रे सांवरिया॥
सुबह शाम नित लगाके आसन—
श्री चरणन को ध्याऊँ।
होये पुलकित रोम-रोम मैं सत्चित् आनंद पाऊँ।
देन प्रभु तेरी न्यारी आजा रे सांवरिया।
तुम ठाकुर हम पुजारी आजा रे सांवरिया॥
योग-योगेश्वर सद्गुरु मेरे योगसुधा बरसाओ।
कृतकृत माने जनसाधारण प्रेमलहर सरसाओ॥
हमको आश तुम्हारी आजा रे सांवरिया।
तुम ठाकुर...॥
सिद्धों के सरताज योगेश्वर आशीष तेय पाऊँ।
जन्म-जन्म तक हे लोकेश्वर महिमा तेरी गाऊँ॥
तुम हो मंगलकारी आजा रे सांवरिया।
तुम ठाकुर हम पुजारी आजा रे सांवरिया॥

उपस्थित पुरुष, स्त्री एवं बच्चे सभी आल्हादित होकर बड़ी तन्मयता के साथ उपरोक्त गीत गा रहे थे। वे सभी इतने भाव बिभोर हो रहे थे कि उन्हें अपने तन तक की सुध नहीं थी। दो व्यक्ति आजा रे सांवरिया' कहते हुए तालियां बजाते-बजाते समाधिस्थ हो गये थे। एक देवी "सांवरिया- सांवरिया" कहती हुई कुछ समय रुदन करती रही। आनन्दाश्रुओं से उसका आंचल बिल्कुल भीग गया था। सहसा उसकी दृष्टि ऊपर को चढ़ गई और वह दादुरी वृत्ति से उछलती हुई श्रीकृष्ण के हिण्डोले की ओर बढ़ने लगी। वहां पहुँचकर पत्थर के मानिन्द स्तब्ध बैठी रही। उस समय उसकी मुद्रा ऐसी बन गई थी कि ऐसा आभास हो कि वह श्रीकृष्ण में लयता प्राप्त करके वंशीवादन कर रही हो। संकीर्तन बराबर चल रहा था।

उधर योगाचार्य जी अपनी पर्णकुटी के के अन्दर बैठे हुए दिव्य-दृष्टि से यह सब दृश्य देख रहे थे एवं अपने भक्तों के मनोभावों को पढ़ रहे थे, फिर भी कौतुकवश अब तक अन-जाने से इने हुए थे। सत्संगियों की मनोदशा को देखकर वे शीघ्रता से उठे और तेज कदमों से मञ्च की ओर बढ़ने लगे। वे एक उज्ज्वल अधोवस्त्र (धोती) धारण किये हुए थे। इसके अतिरिक्त उनके तन पर कोई वस्त्र नहीं था। उनके गौर-वर्ण दीर्घ वक्षस्थल पर यज्ञोपवीत सुशोभित था तथा मुखमण्डल अपार तेजसे देदीप्यमान था। सभी सत्संगियों ने खड़े होकर तथा नतमस्तक होकर उनका अभिवादन किया। 'श्री तपोनिधि महाराज की जय हो' का आल्हादक गगनभेदी जयघोष पुनः वायुमण्डल में गुञ्जरित हो उठा। योगा-चार्य श्री तपोनिधि जी महाराज ने सभी भक्तों को स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखकर आश्वस्त

किया एवं उन्हें बैठने का संकेत करके स्वयं भी मञ्च पर आसीन हो गये।

कुछ क्षण के लिए वातावरण में खामोशी सी छा गई। सबकी दृष्टि योगाचार्य जी के मुखारविन्द की ओर टिकी हुई थी और कान उनके उपदेशामृत को पान करने के लिए लालायित थे। इसी बीच योगाचार्य जी ने उपस्थित समुदाय को अमृत बरसाने वाली वरद दृष्टि से देखकर अत्यन्त मधुर एवं गंभीर वाणी में उपदेश आरम्भ किया—

तुम सब बड़े सौभाग्यशाली हो जो कि अखिल ब्रह्माण्ड नायक, योग-योगेश्वर श्रीकृष्ण के पावन चरणारविन्दों में प्रीति रखते हो और उनकी पावन जयन्ती मनाने यहां एकत्रित हो रहे हो। यद्यपि समस्त हिन्दू जाति परम्परा से इस पुनीत पर्व को मनाती आ रही है फिर भी अधिकांश लोगों की यह धारणा है कि श्रीकृष्ण ने द्वापर युग में शरीर धारण किया था और फिर उसे छोड़ दिया। किन्तु बात ऐसी नहीं है। श्रीकृष्ण तो अनादि हैं, अजन्मा है तथा अविनाशी हैं। वे आज भी अव्यक्त रूप में सर्वत्र विद्यमान हैं एवं कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का संचालन कर रहे हैं। गीता में उन्होंने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है—

अजोऽपि सन् अव्ययात्मा
भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय
संभवाम्यात्ममायया ॥
परित्राणाय साधूनां
विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय
संभवामि युगे - युगे ॥
नाहं प्रकाशः सर्वस्य
योगमाया समावृतः।

इत्यादि श्लोकों में उन्होंने इस रहस्य को जनकल्याणार्थ प्रकट कर दिया है। तुम लोग गीता का उपदेश नित्य प्रति सुनते हो जिसमें जगदात्मा ने पवित्र योग-मार्ग का उपदेश किया है। अतः तुम लोग ध्यानयोगी बनो। नियमानुवर्तिता से ध्यानाभ्यास किया करो और अपने गुरुप्रदत्त मन्त्र का खूब जाप किया करो। यही श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों की सच्ची भक्ति है, सच्ची उपासना है और आत्मकल्याण का एकमात्र साधन है। देखो- ध्यानबिन्दूपनिषद में ध्यानयोग की महिमा इन शब्दों में गाई गई है—

यदि शैलसमं पापं
विस्तीर्णं बहु योजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन
नान्यो भेत्ता कदाचन ॥

अर्थात् कई योजन तक फैला हुआ पापों का पहाड़ भी ध्यानयोग के अभ्यास से नष्ट

हो जाता है। इसके अतिरिक्त उन पापों को नष्ट करने का अन्य कोई साधन नहीं है। यह सुनकर प्रियव्रत नामक एक जिज्ञासु युवक हाथ जोड़कर सम्मुख खड़ा हो गया और बड़े विनीत भाव से बोला—

प्रश्न—परम पूज्य गुरुदेव! कृपा करके यह बतलाइये कि ध्यानाभ्यास की सरल और उत्तम विधि कौन सी है जिसे अपनाकर साधारण सांसारिक व्यक्ति भी ध्यानयोगी बन सकें।

उत्तर—हे पुत्र: सुनो—भगवान व्यासदेव जी ने योगी बनने का एक उत्तम उपाय प्रशस्त किया है—

स्वाध्यायाद्योगमासीत
योगात्स्वाध्यायमामनेत।
स्वाध्याय योगसम्पत्या
परमात्मा प्रकाशते ॥

अर्थात् साधक को चाहिए कि वह किसी सुखासन पर बैठकर अपने इष्ट-मन्त्र का खूब जाप करे। जप का अभ्यास इतना अधिक बढ़ा ले कि इष्ट मन्त्र उसके मन और बुद्धि में वास कर जाये। जप के बाद ध्यान और ध्यान के बाद जप करे। इस प्रकार लगातार अभ्यास करते रहने से वह अन्तर्जगत में प्रवेश पा जायेगा और उसे परमात्मा का प्रकाश मिल जायेगा।

ध्यानयोग की साधना-विधि गीता के छठे अध्याय में श्लोक संख्या ११ से १४ तक सविस्तार वर्णित की गई है। यही बात श्वेताश्वतरोपनिषद् के निम्नलिखित श्लोक में भी दुहराई गई है।

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं
हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्,
स्त्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥

साधक को चाहिए कि वह ध्यानाभ्यास करते समय अपना सिर, गला और छाती इन तीनों को एक सीध में ऊँचा उठाये रखे तथा शरीर को सीधा और स्थिर रखे। इसके बाद प्रत्याहार द्वारा समस्त इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर उनका मन के द्वारा हृदय में निरोध कर लेना चाहिये। उसके बाद ॐकार रूप नौका द्वारा अर्थात् 'ॐ' इस मन्त्र का जप तथा उसके अर्थरूप परमेश्वर का ध्यान करते हुए समस्त भयानक प्रवाहों को पार कर लेना चाहिए।

प्रश्न—पूज्य गुरुदेव! कृपया यह भी स्पष्ट कर दीजिये कि साधक को कैसे स्थान पर बैठकर ध्यानयोग का अभ्यास करना चाहिये?

उत्तर—हे सौम्य! सुनो। वैसे तो मनुष्य हर स्थान पर ध्यानाभ्यास कर सकता है

किन्तु तीव्रतम अभ्यास के लिए यह आवश्यक है कि साधक ध्यानयोग की साधना के लिए पवित्र और एकान्त स्थान की ही तलाश करे। जहाँ तक सम्भव हो वह स्थान इस प्रकार का होना चाहिए, जैसे—

समे शुचौ शर्करा वह्निवालुका-
विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने
गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत् ॥

अर्थात् ध्यानयोगी को ऐसे स्थान पर अपना आसन लगाना चाहिए जहां की भूमि समतल हो, ऊँची-नीची और टेढ़ी-मेढ़ी न हो, जो सब प्रकार से शुद्ध हो और स्वभाव से ही पवित्र हो, जहां मन में विक्षेप करने वाला किसी प्रकार का शब्द न होता हो, जो जल और आश्रय आदि की दृष्टि से अनुकूल हो, जहां का दृश्य नेत्रों को पीड़ा देने वाला न हो ऐसे गुफा आ द वायु शून्य स्थान में ध्यानयोग की साधना करनी चाहिए।

प्रश्न—प्रभो! साधक का ध्यानाभ्यास ठीक चल रहा है कि नहीं इसकी क्या पहचान है?

उत्तर—प्रिय वत्स! तुम योग के उत्तम जिज्ञासु मालूम पड़ते हो और जनकल्याणार्थ इस प्रकार के गूढ़ प्रश्नों को पूछ रहे हो। अतः सुनो—तुम्हारे प्रश्न का उत्तर श्वेताश्वतरोपनिषद में इस प्रकार दिया गया है—

नीहारधूमार्कानिलानलानां,
खद्योतविद्युत्स्फटिक शशीनाम।
एतानि रूपाणि पुरस्सराणि,
ब्रह्मण्यभिव्यक्ति कराणि योगे॥

परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त जब मनुष्य ध्यानयोग का साधन आरम्भ करता है तो उसे अपने सामने कभी कुहरे के सदृश रूप दीखता है, कभी धुआं सा दिखाई देता है, कभी सूर्य के समान तेज प्रकाश दीखता है, कभी निश्चल वायु के समान निराकार रूप अनुभव होता है, कभी अग्नि के सदृश, कभी जुगनू की सी टिमटिमाहट, कभी बिजली की सी चकाचौंध, कभी स्फटिक मणि के समान उज्ज्वल रूप, कभी चन्द्रमा का सा शीतल प्रकाश सर्वत्र फैला हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार के सभी दृश्य योग-साधना में प्रगति के द्योतक हैं।

श्रद्धापूर्वक निरन्तर अभ्यास करता हुआ ध्यानयोगी योग की विधि भूमिकाओं को पार करता हुआ उस स्थिति को पा जाता है जिसके लिये मुण्डकोपनिषद में कहा गया है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिः
छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि
तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

अर्थात् कार्य और कारणरूप उस परात्पर परमेश्वर को तत्व से जान लेने पर जीवात्मा के हृदय में स्थित अविद्या रूप वह गांठ खुल जाती है जिसके कारण उसने इस जड़ शरीर को ही अपना स्वरूप मान रखा है, उसके सभी संशय दूर हो जाते हैं और समस्त शुभा-शुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं जिससे वह सभी बन्धनों से मुक्त होकर परमानन्द स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है।

तुम्हें जगदात्मा श्रीकृष्ण के वचनों पर विश्वास करते हुए योगी बनने की चेष्टा करनी चाहिए। भगवान का यह आदेश है

तपस्विभ्योऽधिको योगी,
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी,
तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

इतना कहकर योगाचार्य जी मौन हो गये और "गोविन्द बोलो भाई गोपाल बोलो" की संकीर्तन ध्वनि पुनः वायु-मण्डल में गूंजने लगी।

❀ निरन्तर सृष्टि प्रवाह ❀

वस्तुतः यह सृष्टि-प्रवाह अथवा प्रकृति-प्रवाह, निरन्तर गतिशील एक नदी के प्रवाह के समान है। नदी तट पर बैठकर जब हम नदी प्रवाह को देखते हैं, तब जो प्रवाह हमारी आंखों के सामने से नीचे को ढलक जाता है, उसे हम फिर कभी नहीं देख पायेंगे। यदि एक चुल्लु पानी नदी में से उठाकर हम उसे उसी में छोड़ देते हैं, फिर दुबारा हम उसी पानी को कभी नहीं उठा सकते। नदी के बहुत से पानी को हम खेतों में लगा लेते हैं, उसी पानी को फिर कभी दुबारा हम नहीं लगा सकते। पर नदी बराबर बह रही है, खेतों में पानी उसी तरह चल रहा है। पर एकबार का लगा पानी फिर हाथ नहीं आता, वह कहां चला जाता है ? उसका कुछ अंश औषधि वनस्पतियों लता वृक्षों में रसरूप से परिणत हो जाता है, और कुछ अंश उसी समय सूर्य के ताप से वाष्प बनकर अन्तरिक्ष में विचरण करता है। ऋतु के अनुसार वही बादल बनकर फिर जलरूप में बरसता है। तब वह किस नदी नाले में बहता है, कहां बरसता है, तथा खेत की उठी वाष्प से कौन सा अंश उसका बना है, या जो बना है, वह यहां है भी या नहीं ? इस सबका हिसाब लगाना हमारी शक्ति से बाहर है, यह हमारा काम नहीं।

—श्री उदयवीर शास्त्री

अन्तर यात्रा का सरलतम साधन

आत्म समर्पण

✱ श्री जगदीश नारायण उपाध्याय

जीवन में जिन आदर्शों के चरितार्थ के लिये हम योग की साधना करते हैं उसका मूल उद्देश्य मनुष्य जाति की मुक्ति के साथ आत्म कल्याण के लिए ईश्वर को प्राप्त करना है, तो हमें वर्तमान सापेक्ष (चेतना) भाव के पीछे विद्यमान निरपेक्ष भाव (अवचेतना) में छिपे अज्ञात सत्ता या प्रकाश तत्व के भीतर चेतन पुरुष के रूप में (ईश्वर) को स्वीकार करना होगा। चाहे इस अज्ञात सत्ता को (God) या (प्रकृत) या 'सतगुरु' किसी नाम या रूप से क्यों न सम्बन्धित करें।

संसार के सभी श्रेष्ठ मनीषियों व पूर्वाचार्यों ने भी एक भाव से इसे स्वीकार किया है। भौतिक प्रकृति के अनुसन्धान से भी यह बात एक प्रकार से प्रमाणित है।

यदि हमने चेतन, पुरुष के रूप में 'ईश्वर' या 'सतगुरु' को सत्य मान लिया तो 'एकोऽहं-बहुस्याम' के मतानुसार उसके मनो जगत में रहने वाली हक-शक्ति [प्रकृत] और दर्शन शक्ति [पुरुष] उसका एकीभाव अस्मिता शक्ति के रूप में उठने वाली अन्तः स्फुरण की भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं के उपक्रम को तथा साथ ही साथ उसके लीला व अवसान के खेल को भी स्वीकार करना होगा।

पातञ्जल योग दर्शन में भी पुरुष के रूप में 'ईश्वर' को या 'सतगुरु' को स्वीकार किया गया है। और उसकी शक्ति को माना है। योग दर्शन और सांख्य दर्शन यद्यपि सजातीय दर्शन हैं परन्तु सांख्य के पुरुष और प्रकृत सूखे हैं।

अतः इन सारी बातों से निश्चित् हो गया कि जगत ही सब की परम गति है। यदि यह नियम चेतन पुरुष 'ईश्वर' या 'सतगुरु' पर लागू हो सकता है तो यही नियम संसार के सभी प्राणियों खासकर मनुष्यों पर तथा उसके प्रकृति पर भी लागू हो सकता है। क्योंकि हम इसी 'ईश्वर' या 'सत्गुरु' के सन्तान हैं। यह कभी नहीं हो सकता है कि एक ही नियम अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग रूप से कार्य करे।

''नियम सर्वत्र समान हैं' यदि यह सत्य है तो इन्हीं नियमों के माध्यम से 'ईश्वर' या 'सतगुरु' में प्रवेश करके हम ईश्वर का साक्षात्कार भी कर सकते हैं। तैत्तीरीय उपनिषद् ३/१ में भी आया है कि 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसं विशन्ति'। 'जिनसे सब पैदा हुये हैं जिनमें उत्पन्न हुए समस्त प्राणी स्थित हैं उनमें सब फिर लौट जायेंगे'। वैज्ञानिकों ने भी माना है कि इस संसार में जितने भी रूपवान पदार्थ हैं, सब अपने चारों ओर वर्तमान परमाणुओं से पैदा होकर परमाणुओं में ही मिल जाते हैं।

यह तो रही विचार, बुद्धि, युक्ति की बात। असली आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ युक्ति राज्य के उसपार समाधि भूमि में प्रवेश करने से होता है। क्योंकि बिना समाधि भूमि में प्रवेश किये सूक्ष्म अन्तःकरण या (अवचेतन जगत) किसी बात को स्वीकार नहीं करता। और बिना अन्तःकरण के स्वीकार किये कोई बात व्यवहार में प्रयोग नहीं ले आई जा सकती।

समाधि भूमि में प्रवेश करने के लिये सबसे पहले हमें सूक्ष्म अन्तःकरण या (अवचेतन जगत) में प्रकाश तत्व में विद्यमान चेतन पुरुष के रूप में 'ईश्वर' या 'सतगुरु' सत्ता तथा मनोजगत में भावना शक्ति के भीतर रहने वाली अन्तःस्फुरण या संवेदना की प्रक्रियाओं को भाव योग द्वारा, 'ईश्वर' या 'सतगुरु' के प्रतीकों के माध्यम से, गुरु प्रदत्त मंत्र या 'प्रणव' से, श्वास-प्रश्वास के भीतर स्पन्दन पैदा करके प्रणिधान की प्रणाली से अनुग्रहीत करके एकाकार करना होगा या जागृत करना होगा।

'ईश्वर' या 'सतगुरु' के प्रतीकों के माध्यम से भावयोग साधन द्वारा, प्रणिधान की प्रणाली के विस्तार से यौगिक साधना या ईश्वर ज्ञान प्राप्त करने की परिपाटी हमारे देश में युगों-युगों से चली आ रही है। पातञ्जल योग दर्शन में भी 'ईश्वर प्रणिधानाद्वा' ॥१-२३॥ तथा 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥१-२६॥ सूत्रों के द्वारा इस आशय को व्यक्त किया गया है। व्यास मुनि ने पातञ्जल योग के पहले के बीसवें सूत्र की व्याख्या करते हुये श्रद्धा के विषय में इतना तक लिख दिया है कि 'सा हि जननीव कल्याणी योगिनं पाति' अतः इन सारी बातों से यह सिद्ध हुआ कि यह नियम या परिपाटी सत्य है। यदि वह नियम या परिपाटी सत्य है तो यही नियम व परिपाटी हमें यौगिक साधना के विस्तार में भी ले आनी होगी।

सबसे पहले भावनात्मक मन से हृदय या अन्तःकरण में अपने को 'ईश्वर' या 'सतगुरु' का स्वरूप मानते हुये, वस्तु चित्रों को आंखों

में मिलाकर श्वास-प्रश्वास द्वारा गुरु मंत्रों या 'प्रणव' का जाप तथा रूप का चिन्तन नित्य श्रद्धा, भक्ति, विश्वास, समर्पण के भाव से करना होगा। इस प्रकार नित्य ध्यानाभ्यास करते-करते विज्ञान के आकर्षण-विकर्षण शक्ति के सिद्धान्त के अनुसार कुछ दिनों पश्चात् यही श्वास-प्रश्वास या 'प्राण' सूक्ष्म होता चला जायेगा और कम्पन या स्फुरण का रूप लेने लगेगा तथा भावनात्मक-विचार या भावनात्मक-चिन्तन मन का स्थान लेने लगेगा, और भावनात्मक रूप को आकृष्ट करने लगेगा। भावनात्मक रूप वृत्त चित्रों से निकलकर आंखों के भीतर प्रवेश करने लगेगी कुछ समय बाद यही कम्पन या स्फुरण श्वांस-प्रश्वांस के खंचने और धारण करने से प्राण-गत होती चली जायेगी। और भावनात्मक मन मनोगत होता जायेगा तथा भावनात्मक रूप चक्षुगत होता जायेगा। इस प्रकार कुछ दिनों पश्चात् मन के उपादान चित्त या अन्तः-करण में यही कम्पन या स्फुरण कारण और प्रक्रियाओं के रूप में उत्पन्न होना आरम्भ हो जायेगा। तब इस कारण और प्रक्रियाओं से उत्पन्न स्फुरण या संवेदना को प्राण स्वीकार करने लगेगा यानी स्फुरण या संवेदना प्राण का रूप ले लेगी। इसी प्रकार निरन्तर अभ्यास से यही स्फुरण या संवेदना बाह्य प्राण से आंखों में होकर दृक-शक्ति (प्रकृत) में जाने लगेगी। तथा अन्तर रूप से इन्द्रियों से होकर मन के अन्दर प्रवेश करने लगेगी। कुछ काल बाद आंख और मन हृदय में बैठ जायगा। तब प्रकृत और उसका मन मिलकर एक हो जायेगा। इसी प्रकार पूर्वत अभ्यास करने से कुछ समय बाद बाह्य प्राण द्वारा उत्पन्न स्फुरण या संवेदना आंखों से उदर स्नायु केन्द्रों द्वारा दर्शन-शक्ति (पुरुष) में जाने लगेगा तथा अन्तर रूप से मन से बुद्धि में प्रवेश करने लगेगा। कुछ काल बाद बुद्धि मस्तिष्क में बैठ जायेगी। तब पुरुष और उसकी बुद्धि मिलकर एक हो जायेगी।

अतः इन सब बातों से ज्ञात हो गया कि सूक्ष्म अन्तःकरण की दो वृत्तियां मन और बुद्धि का समावेश प्रकृत और पुरुष के साथ हो सकता है।

इस प्रकार जब मन और बुद्धि दो वृत्तियों का समावेश प्रकृत और पुरुष के साथ सूक्ष्म अन्तःकरण में हो गया तो सूक्ष्म अन्तःकरण भी शांत हो जायेगा तथा उसके मन के भीतर पहले से छिपा हुआ करतापन व भोक्तापन का बोध भी दब जायेगा। तब पुनः प्रवृत्ति अपने पूर्ववर्ती स्वभाव या प्रकृति के अनुसार कार्य करने लगेगी और मन उदासीन हो जायेगा। मन के उदासीन हो जाने वर्तमान अज्ञान-अन्धकार पूर्ण, अनित्य, अशान्त सुख-

दुःख आदि द्वन्द्वों से भरा हुआ जीवन नीरस सा लगने लगेगा। ऐसी अवस्था या वातावरण में अज्ञान-अन्धकार को भेदकर प्रगट होगा हृत्पुरुष का देवता चेतन पुरुष के रूप में 'ईश्वर' या 'सत्गुरु'। तब अन्तरात्मा या हृत्पुरुष इस आपातदृष्ट गुलामी से मुक्त होने के लिये अपने सत्य स्वरूप, सत्य जीवन को प्राप्त करने के लिये, आत्मा और परमात्मा का विछोह हो गया है उसे दूर करने के लिये कर उठेगा 'पुकार' या अभीप्सा।

जब अन्तरात्मा या हृत्पुरुष का जागरण और भगवान के लिए 'पुकार' उठ जायेगा तो उन्हीं पूर्ववर्ती नियमों, श्रद्धा, भक्ति, विश्वास, समर्पण द्वारा आसानी से 'अहंकार' को भी शान्त करके सूक्ष्म अन्तःकरण में 'अस्मिता-शक्ति' के साथ समावेश कराया जा सकता है और समाधि भूमि में प्रवेश किया जा सकता है।

अतः अब पूर्ण रूप से साबित हो गया कि आत्मसमर्पण जैसे सरलतम यौगिक सिद्धान्त व साधन द्वारा समाधि भूमि में आसानी से प्रवेश किया जा सकता है और ईश्वर ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

जहाँ तक प्रश्न है—अन्तरात्मा के 'पुकार' उठने न उठने का। साधारण तथा सभी साधकों के अन्दर हम इसे नहीं देख पाते। खासकर संस्कार वश भावना प्रधान साधकों के अन्दर देखा गया है—क्योंकि वे मनोविकाश के विशिष्ट अवस्था में हैं और इस मनोविकाश में एक ऐसा स्थल कभी न कभी अवश्य आता है। अब आगे की बात पातञ्जल भाष्य के ३·६ के अनुसार जाना जायेगा। 'योगेन योगो ज्ञातव्यः योगो योगात प्रवर्तते'।

❀ आत्म-स्वरूप निरूपण ❀

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

यह विपश्चित्—मेधावी आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है, यह न तो किसी अन्य कारण से ही उत्पन्न हुआ है और न स्वतः ही कुछ [अर्थान्तररूप से] बना है। यह अजन्मा, नित्य (सदा से वर्तमान) शाश्वत (सर्वदा रहने वाला) और पुरातन है तथा शरीर के मारे जाने पर भी स्वयं नहीं मरता।

पूर्व प्रकाशित से आगे—

ध्यान-योग एवं आत्म साक्षात्कार

❀ श्री सूरजप्रकाश शर्मा

नैववाचानमनसा प्राप्तु'शक्योनचक्षुषा।
(कठ०/अ०/२/व०/३)

वाक्यकर आत्मा प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, न मनकर, न चक्षुकर प्रत्यक्ष हो सकता है।

निदिध्यासन ध्यान व समाधि के लक्षणों में प्रमाणों को अब दिखलाता हूँ।

इत्थंवाक्यैस्तदर्थानु-
सन्धानश्रवणं भवेत्।
युक्त्यासंभावितत्वानु
संधानंमननंतुतत् ॥
(पञ्चदशी)

इस प्रकार महावाक्यों द्वारा महावाक्यों से अर्थ का चिन्तन श्रवण है. श्रवण किये हुए अर्थ का जो युक्तियों द्वारा चिन्तन होता है वह मनन है।

निदिध्यासन का लक्षण—

ताभ्यांनिर्विचिकित्सेऽर्थे
चेतसःस्थापितस्ययत्।
एकतानत्वमेतद्धि
निदिध्यासनमुच्यते ॥

उस श्रवण मनन से निश्चित किये हुए अर्थ में जो चित्त का एकतानत्व है, एकाकार वृत्तियों का प्रवाह है वह निदिध्यासन कहलाता है।

समाधि का लक्षण—

ध्यातृध्यानेपरित्यज्य
क्रमाद्ध्येयैकगोचरम्।
निवातदीपवच्चित्तं
समाधिरभिधीयते ॥

इस श्लोक पर राम-कृष्ण की टीका—

तस्यैवनिदिध्यासनस्य परिपाकदशा-रूपं समाधिमाह।

उसी निदिध्यासन की परिपाक दशारूप समाधि को कहते हैं, ध्याता व ध्यान को छोड़ कर अर्थात् ध्याता व ध्यान की स्फूर्ति नहीं रहे, अभ्यास के क्रम से जब निवात-दीपवत् एक ध्येय में निश्चल चित्त होवे तो वह समाधि कहलाती है। समाधि के बिना आत्मा प्रत्यक्ष नहीं होती है क्योंकि यह अति गुप्त है।

एषसर्वेषु भूतेषु गूढोत्मानप्रकाशते।

सर्वान्तर आत्मा वह यह आत्मा ब्रह्मादि तृणपर्यन्त सब भूतों में गुप्त है अविद्या से आवृत है इसीसे सब जीवों को प्रत्यक्ष नहीं है–

नाहंप्रकाशःसर्वस्य योगमायासमावृतः ।

(भगवद्गीता ७/२५)

शंकर भाष्य—

योगोगुणानां युक्तिर्घटनं सैवमाया योगमाया तथा योगमायया समावृतः संछन्न ।

तीनों गुणों की योगरूप माया से आच्छादित हुआ मैं परमात्मा सब लोगों के सामने प्रकट नहीं होता है अर्थात् आत्म-साक्षात्कार वाले योगीन्द्र को सर्वान्तरात्मा प्रत्यक्ष ही है, सब जीवों को निरवयव आत्मा प्रत्यक्ष नहीं है।

इस प्रकार श्रुति सिद्ध है कि बिना ध्यान-योग के आत्म-साक्षात्कार नहीं होता है।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति
केचिदात्मानमात्मना ।

(गीता १३/२३)

कोई योगी ध्यानयोग कर चित्त में आत्मा को एकाग्र मन से साक्षात् करते हैं।

ध्यानयोग, ध्यान, समाधियोग यह शब्द एकाग्र वृत्ति के बोधक हैं, एकाग्र वृत्तिरूप एकाग्रता का चित्त, बुद्धि उपादान कारण है जैसे 'नीलोयंऽघटः।' जब तक योग का अभ्यास नहीं किया जाता तब तक आत्म-साक्षात्कार की योग्यता प्राप्त नहीं होती। क्योंकि जब तक आत्म-साक्षात्कार नहीं हो तब तक संशय तथा विपर्य्य रूप प्रतिबन्ध की निवृत्ति नहीं होती है आत्म-दर्शन कर होती कही है—

ज्ञात्वादेवं सर्व पाशापहानिः ।

(श्वेता० अ० १/१२)

इस पर शाङ्कर भाष्य—

पाशरूपाणां सर्वेषां
विद्यादीनामपहानिः ।

परमात्मदेव को साक्षात्कार कर अविद्या आदि सर्व बन्धनों की निवृत्ति होती है।

भिद्यतेहृदयग्रन्थि
छिद्यन्ते सर्व संशयाः ।
क्षीयन्ते चास्यकर्माणि
तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

(मु० २/खण्ड २/८)

उस परमात्मा के साक्षात् हुए अनात्म-शरीर आदि में आत्म भ्रान्ति रूप हृदय-ग्रन्थि टूट जाती है, और सब संशय टूट जाते हैं, तथा इस आत्मदर्शी के कर्म क्षय हो जाते हैं। योगीश्वरों से अन्य पण्डित भी बलात्कार से प्रत्यक्ष नहीं कर सकते हैं।

आरूढ़शक्तेरहमोविनाशः कर्तुं न-शक्यः सहसापिपण्डितैः। येनिर्विकल्पा-ख्यसमाधिनिश्चला स्तानन्तराऽन्तभवा-हिवासना । (विवेक चूडामणि ३४९)

चित्त शरीरादिकों में अहंतारूप दृढ़ बल वाले विपर्य्यय का नाश निर्विकल्प समाधि में निश्चल हुए योगीश्वरों से बिना पण्डित भी बलात्कार नहीं कर सकते क्योंकि, अनन्त-जन्मों से विपर्य्यय के अनन्त संस्कार दृढ़ हो रहे हैं।

इस प्रकार जिन पुरुषों की ब्रह्माकार वृत्ति सम्यक् वृद्धि को प्राप्त हुई है फिर परिपक्व हुई है। वह पुरुष सत्य ब्रह्म को प्राप्त होता है, उनसे अन्य जिनकी वृत्ति ब्रह्माकार नहीं हुई वह 'शब्दवादी' अहं ब्रह्म-अहं ब्रह्म ऐसे शब्दों को कहने से सत्य ब्रह्म को नहीं पा सकते।

कुशलाब्रह्मवार्तायां
वृत्तिहीनाः सुरागिणः।
तेप्यज्ञानितयानूनं
पुनरायान्ति यान्ति च ॥

—अपरोक्षानुभूति

जो अतिरागी पुरुष ब्रह्म की वार्ता में चतुर हैं परन्तु ब्रह्माकार वृत्ति से शून्य हैं वह भी अज्ञानी है अतः पुनः पुनः जन्मते मरते हैं।

रागीयुक्तः पचमानोत्महेतोर्मूर्खोत्रक्तानृपहीनं च राष्ट्रम्। एते सर्वशोच्यतां यान्तिराजन् यश्चायुक्तः स्नेह हीनः प्रजासु।

(१२/२९१/२६। मोक्ष धर्म पर्व)

महर्षि पराशर जी जनक को कहते है कि हे राजन् जैसे राग वाला योग अभ्यासी, और अपने लिए अन्न को पकाने वाला व मूर्ख उपदेष्टा और राजा से रहित देश यह सब शोचनीय है अर्थात् निन्दनीय हैं ऐसे ही जो विरक्त पुरुष योग से रहित है वह भी निन्दनीय है। इस प्रकार—

यथाऽसूयावान् योगी-
निन्द्यः एवं विरक्तोपि।
योगशून्यो निन्द्य एवेति
बहुदृष्टान्तपूर्वकमाह ॥

जैसे असूया वाला योगी निन्दा के योग्य है ऐसे ही योग से शून्य विरक्त भी निन्दा के योग्य ही है यह बहुत दृष्टान्त पूर्वक मूल श्लोकों में कहते है। अतः जिस धर्मशील पुरुष के पूर्वकृत पुण्य-पुञ्जों से शरीरादि क्षणपरिणामी सब जगत में विवेक कर दृढ़ वैराग्य व मुमुक्षुत्व उत्पन्न हुआ है उस विवेकी वीतराग मुमुक्षु पुरुष को यही योग्य है कि मोक्ष के लिए निदिध्यासन की परिपाक अवस्था रूप अंग समाधि के दृढ़ अभ्यास कर आत्म-साक्षात्कार रूप धर्म मेघसंज्ञक संप्रज्ञातयोग के शरणागत होवे।

पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः ॥

महाभारत

मन, वचन और कर्म के द्वारा सम्पूर्ण प्राणियों के साथ अद्रोह अर्थात् मित्रता करना और प्राणियों के ऊपर अनुग्रह करके उन्हें सुख पहुँचाना आदि सनातन धर्म ही परम धर्म है ।

× × × ×

अधृष्यः सर्व भूतानामायुष्मान्नीरुजः सुखी ।
भवत्यभक्षयन्मांसं दयावान प्राणिनामिह ॥

महाभारत

जो मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों पर दया करता है और कभी भी मांस नहीं खाता वह मनुष्य न तो स्वयं किसी भी प्राणी से डरता है न दूसरों को डराता ही है । वह दीर्घायु व स्वस्थ होता है और सुख पूर्वक जीता है ।

× × × ×

नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः ।
यत् स्यात् धारणायुक्तं स धर्म इत्युदाहृतः ॥

उस महान धर्म को प्रणाम है, जो सब मनुष्यों को धारण करता है । सबको धारण करने वाले जो नियम हैं, वे धर्म हैं ।

× × × ×

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवाव धार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

सुनो समस्त धर्मों का तत्व इतना ही है कि जो अपने को प्रतिकूल लगे, अच्छा न लगे उसका दूसरों के प्रति भी आचरण न करे।

× × × ×

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोष मृच्छति मानवः।
स नियम्य तु तान्येव सिद्धिं समाधिगच्छति॥

इन्द्रियों के विशेष सङ्ग से मनुष्य दोष को प्राप्त होता है परन्तु इन्द्रियों को काबू में रखने से वही मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

× × × ×

श्रुत्वा स्पृष्टा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः॥

जो मनुष्य सुनकर, स्पर्श कर, देखकर, खाकर एवं सूंघकर हर्ष या ग्लानि का अनुभव नहीं करता वही जितेन्द्रिय कहलाता है।

× × × ×

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृते पादादिवोदकम्॥

जैसे जल के बर्तन में छिद्र होने के कारण उसमें से जल बह जाता है वैसे ही इन्द्रियों के समूह में से किसी भी एक इन्द्रिय के विषय में आसक्त होने पर मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

× × × ×

अहिते हितबुद्धिः स्यादध्रुवे ध्रुवचिन्तकः।
अनर्थे चार्थ विज्ञानी स्व मृत्युं न हि वेत्ति किम॥

बुरी वस्तु को भी अच्छी समझने वाला, अनिश्चित् को निश्चित् समझने वाला और अनर्थ को अर्थ समझने वाला व्यक्ति भी क्या अपनी मृत्यु को नहीं जानता?

× + + +

पश्यन्नपि न पश्येत् स शृण्वन्नपि न बुध्यति।
पठन्नपि न जानाति तव माया विमोहितः॥

(हे देवि!) इस संसार में जन्म लेकर मनुष्य तेरी माया के जाल में पड़कर देखता हुआ भी नहीं देखता, सुनता हुआ भी नहीं समझता और पढ़ता हुआ भी नहीं जानता अर्थात् अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता। —श्रुतिसार

नारद पुराण से –

卐 अध्यात्म तत्व 卐

❀ प्रेषक:– श्री मानिकचन्द ऊमर वैश्य

पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और पांचवां तेज—ये पांच महाभूत हैं। जो सब प्राणियों की उत्पत्ति और लय के स्थान हैं। जो भूत जिससे उत्पन्न होते हैं, वे फिर उसी में लीन हो जाते हैं। जैसे समुद्र की लहरें उठती है फिर समुद्र ही में लीन हो जाती हैं। उसी प्रकार ये महाभूत क्रमशः अपने-अपने कारण रूप अन्य भूतों से उत्पन्न होते और अल्पकाल आने पर फिर उसी में लीन हो जाते हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गों को फैलाकर फिर उन्हें समेट लेता है, उसी प्रकार भूतात्मापरमेश्वर अपने रचे हुए भूतों को पुनः अपने में लीन कर लेता है। महाभूत पांच ही हैं। सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति करने वाले परमात्मा ने समस्त प्राणियों में उन्हीं पांचों भूतों को भली-भांति नियुक्त किया है, किन्तु जीव उन परमात्मा को नहीं देखता है।

शब्द, कान और शरीर के छिद्र– ये तीनों आकाश से प्रकट हुए हैं। स्पर्श, चेष्टा और त्वचा---ये तीन वायु के कार्य हैं। रूप, नेत्र और पाक—इन तीन रूपों में तेज की उपलब्धि है। रस, क्लेद (गीलापन) और जिह्वा—ये तीन जल के गुण बतलाये गये हैं। गन्ध, नासिका और शरीर ये तीन भूमि के कार्य हैं। इन्द्रियरूप में पांच ही महाभूत हैं और छठा मन है। बुद्धि को सातवां तत्त्व कहा गया है। क्षेत्रज्ञ आठवां है।

कान सुनने के लिए और त्वचा स्पर्श का अनुभव करने के लिए है। रस का आस्वादन करने के लिए रसना (जिह्वा) और गन्ध ग्रहण करने के लिए नासिका है। नेत्र का काम देखना है। मन का संदेह करना है। बुद्धि निश्चय करने के लिये है और क्षेत्रज्ञ साक्षी की भांति स्थित है। दोनों पैरों से सिर तक – जो कुछ भी नीचे-ऊपर है सबको वह क्षेत्रज्ञ ही देखता है। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) व्यापक है। इसने इस सम्पूर्ण शरीर का व्याप्त कर रक्खा है। पुरुष ज्ञाता है, और सम्पूर्ण इन्द्रियां उसके लिए ज्ञेय हैं। तम, रज और सत्त्व—ये सारे भाव पुरुष के आश्रित हैं। जो मनुष्य इस अध्यात्म ज्ञान को जान लेता है, वह भूतों के आवागमन का विचार करके धीरे-धीरे उत्तम शान्ति पा लेता है। पुरुष जिससे देखता है वह नेत्र है। जिससे सुनता है, उसे श्रोत्र

(कान) कहते हैं, जिससे सूँघता है, उसका नाम घ्राण (नासिका) है। वह जिह्वा से रस का अनुभव करता है और त्वचा से स्पर्श का अनुभव करता है। पुरुष जिससे कुछ इच्छा करता है वह मन है। बुद्धि इन सब का अधिष्ठान है। अतः पांच विषय और पांच इन्द्रियां उससे पृथक कही गयी है। इन सब का अधिष्ठाता चेतन क्षेत्रज्ञ इनसे नहीं देखा जाता।

प्रीति या प्रसन्नता सत्त्वगुण का कार्य है। शोक रजोगुण और क्रोध तमोगुण है। इस प्रकार ये तीन भाव हैं। लोक में जो-जो भाव हैं, ये सब इन तीनों गुणों से आबद्ध हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण सदा प्राणियों के भीतर रहते हैं। इसलिए सब जीवों में सात्त्विकी, राजसी और तामसी-यह तीन गुण सदा रहते हैं।

हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख एवं चित्त की शान्ति-इन भावों को सात्त्विक गुण समझना चाहिये। असंतोष, परिताप, शोक, लोभ तथा असहनशीलता—ये रजोगुण के चिन्ह हैं। अप-मान, मोह, प्रमाद, स्वप्न, तन्द्रा आदिभाव तमोगुण के ही भिन्न-भिन्न कार्य हैं। जो बहुधा दोष की ओर जाता है, उस मन के दो स्वरूप है - याचना करना और संशय। जिसका मन अपने अधीन है, वह इस लोक में तो सुखी होता ही है, मरने के बाद परलोक में भी उसे सुख मिलता है।

सत्त्व (बुद्धि) तथा क्षेत्रज्ञ (पुरुष) ये दोनों सूक्ष्म है। जिसे इन दोनों का अन्तर (पार्थक्य) ज्ञात हो जाता है, वह भी इस लोक में और परलोक में सुख का भागी होता है इसमें एक तो गुणों की सृष्टि करता है और एक नहीं करता। सत्त्व आदि गुण आत्मा को नहीं जानते किन्तु आत्मा सब प्रकार से गुणों को जानता है। यद्यपि पुरुष गुणों का द्रष्टा मात्र है, तथापि बुद्धि के संसर्ग से वह अपने को उसका स्रष्टा मानता है। इस प्रकार सत्त्व और पुरुष का संयोग हुआ है, किन्तु इनका पार्थक्य निश्चित है। जब बुद्धि मन के द्वारा इन्द्रियरूपी घोड़ों की रास खींचती है और भली-भांति काबू में रखती है, उस समय आत्मा प्रकाशित होने लगता है। जो मनुष्य प्राकृत कर्मों का त्याग करके सदा आत्मा में ही रमण करता है, वह सम्पूर्ण भूतों का आत्मा होकर उत्तम गति को प्राप्त होता है।

जैसे जलचर पक्षी जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार शुद्ध बुद्धि युक्त पुरुष लिप्त नहीं होता। वह सम्पूर्ण प्राणियों में अनासक्त भाव से रहता है।

इस प्रकार अपनी बुद्धि द्वारा विचार करके मनुष्य अनासक्त भाव से व्यवहार करे। वह हर्ष शोक से रहित हो सभी अवस्थाओं में सम रहे। ईर्ष्या-द्वेष को त्याग दे। बुद्धि और चेतन की एकता है, यही हृदय की सुन्दर ग्रन्थि है। इसको खोलकर विद्वान् पुरुष सुखी हो जाय और संशय का उच्छेद करके सदा के लिए शोक त्याग दे। जैसे मलिन मनुष्य गंगा में स्नान करके शुद्ध होते हैं उसी प्रकार श्रेष्ठ विद्वान् इस ज्ञानगंगा में गोता लगाकर निर्मल हो जाते हैं ऐसा ही समझो। इस तरह जो मनुष्य इस उत्तम अध्यात्म-ज्ञान को जानते हैं वे कैवल्य को प्राप्त होते हैं।

आश्रम पर आयोजित योग-महामेला

❀ श्री प्रभुजी की पावन जयन्ती एवं महत्वपूर्ण योग-वचन ❀

सदा की भाँति इस वर्ष भी गत चैत्र शुक्ला सप्तमी, अष्टमी और नवमी तदनुसार दिनांक ११, १२ और १३ अप्रैल सन् ८१ को सर्वांई आश्रम के विशाल एवं सुरम्य प्रांगण में योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की पावन जयन्ती, त्रिदिवसीय योग-महामेला के रूप में परम श्रद्धेय श्री सद्गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की अध्यक्षता और निर्देशन में सविधि अतीव उत्साह व उल्लास के वातावरण में सम्पन्न हुआ।

इस योग महामेला - समारोह में भाग लेने के लिए उत्तर भारत के प्रायः सभी राज्यों में स्थापित श्री सिद्धगुफा के शाखा संगठनों के प्रतिनिधि भाई-बहिन कई हजार की संख्या में उत्सव आरम्भ के दो तीन दिन पूर्व से ही आकर अपने-अपने नियत आवास स्थलों में ठहर गये थे। आगन्तुकों का यह क्रम दो तीन दिन पूर्व से आरम्भ होकर समारोह के अंतिम दिन तक चलता रहा। यहाँ तक कि गुरु पूजन की बेला 'रामनवमी' तक भी श्रद्धालु साधकों का आगमन संध्या समय तक होता रहा। दीक्षार्थी साधक भारी संख्या में मालायें और पूजन की सामग्री लिये हुए सैंकड़ों की संख्या में पंक्तिबद्ध होकर अपनी बारी की प्रतीक्षा में खड़े थे जिन्हें कई-कई घण्टों के बाद ही पूजन का अवसर प्राप्त हो सका।

प्रतिदिन का प्रभात-कालीन कार्यक्रम श्री गुरुदेवजी की सामूहिक आरती से और ध्यानयोग की कक्षाओं से आरम्भ होता था। प्रभु कीर्तन श्री ज्ञानी जी, बहन श्री द्रोपदीदेवी जी, संगीताचार्य श्री ओदक जी, बहन श्री उमाशर्मा व भोजदत्त जी शर्मा एवं अन्य संगीत मण्डलोंके मधुरतम गायनों से आरम्भ होता रहा। श्री गुरुदेवजी के उपदेशप्रद व्याख्यान तो हृदयग्राही होते ही थे जिन अन्य विद्वान वक्ताओं के अनुभूत विचारों से भी साधकोंने विशेष लाभ उठाया उनमें आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा, डा० रामअवतार शर्मा और भू० पू० केन्द्रीय मन्त्री श्री राजनारायण जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। योगासनों का प्रदर्शन और उनके लाभों का वर्णन भी उपादेय रहा। दिल्ली के श्री नौरताराम ने अपने शब्दभेदी शरसंधान की अमोघ क्रिया का सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया।

अन्तिम दिन विशाल भण्डारे के साथ उत्सव का समापन हुआ। इस भण्डारे की विशेषता होती है सबसे प्रथम वेदपाठी विप्र समुदाय का सस्वर वेदपाठ और तत्पश्चात् श्री गुरुदेव जी द्वारा ब्राह्मण समुदाय से भोजन प्रारम्भ करने का भाव भरी प्रार्थना करना। यह दृश्य बड़ा ही सात्विक और हृदय को आनन्द प्रदान करने वाला होता है।

सम्पूर्ण समारोह में लगभग १० हजार योग प्रेमी भाई-बहनों ने भाग लिया। आगत प्रतिनिधि भाई पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, के सुदूर कलकत्ता, दुर्गापुर जैसे शहरों से पधारे थे। सिद्धगुफा प्रकाशन में प्रकाशित हिन्दी मासिक 'सिद्धयोग' का एक दर्शनीय और पठनीय विशेषाङ्क भी इस अवसर पर प्रकाशित हुआ—जिसकी विद्वानों ने विशेष रूप से सराहना की।

SIDHAYOGA Regd. No. L. AG. 08

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक:
योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

❁ धर्म एक कार्यान्वित जीवन है ❁

धर्म एक कार्यान्वित जीवन है। जीवन में जो कुछ है, जो कुछ भी सार है, वही धर्म है। धर्म केवल आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध स्थापित करने वाला ही नहीं है, बल्कि हमारे सभी कर्म, सभी व्यवहार, क्रोध, करुणा, दया, स्नेह, त्याग, तप, तितिक्षा आदि के बोधक हैं और इसी के ही सहारे सभी मानव व्यापार—व्यवहार होते हैं तथा सभी मानव-वृत्तियां अपना कार्य करती हैं। केवल यही एक ऐसा मार्ग है, जहां हम सब एक हो जाते हैं और सभी मानव-जाति को एक ही रंग में रंगा हुआ और एक ही सूत्र में सबको बंधा हुआ देखते हैं।

धर्म ही संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। यह मनुष्य के महत्त्व और कीर्ति को पराकाष्ठा तक पहुँचाता है। धर्म करने वाले को इस जगत में अर्थ और सुख तो मिलता ही है, साथ ही परलोक में भी अभ्युदय और इष्ट की प्राप्ति होती है और अन्त में मोक्ष-लाभ होता है।

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलां, ताजगंज, आगरा-१ फोन ६३१६८